RNI No.: MPHIN/2018/77137

ISSN 2582-483X

पाठशाला
भीतर और बाहर

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष–6 अंक–19 मार्च 2024
तिमाही, भोपाल



पाठशाला
भीतर और बाहर

मार्च, 2024 (वर्ष 6, अंक 19)

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

सम्पादकीय

बच्चे कैसे सीखते हैं? कोई भी इंसान किसी नई अवधारणा को कैसे आत्मसात करता है? इन सवालों पर काफ़ी सोचा जाता रहा है। बच्चों के साथ काम करते हुए भी यह सवाल बार-बार ज़ेहन में आ ही जाता है। इन सवालों का कोई आसान जवाब नहीं है, और हो भी नहीं सकता है। बच्चों के साथ काम करते हुए उनके सीखने की विविध प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने पर हम सभी को अपना-अपना कुछ उत्तर मिलता भी है। लेकिन इसमें दिलचस्प यह होता है कि कोई भी एक जवाब सभी बच्चों के सीखने की प्रक्रिया के लिए सही नहीं होता। यही नहीं, कोई एक जवाब किसी एक व्यक्ति या बच्चे के लिए सीखने की हर परिस्थिति में सही नहीं होता, क्योंकि हर सीखने की परिस्थिति की और हर बच्चे की अपनी एक पृष्ठभूमि और सन्दर्भ होता है जोकि परिवर्तनशील भी होता है। शायद इसीलिए कहते हैं कि सीखना रैखिक प्रक्रिया नहीं वरन् जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है।

सीखने की प्रक्रिया की इस अरैखिकता, जटिलता और विविधता के कई उदाहरण आपको इस अंक के लेखों में पढ़ने को मिलेंगे। एक लेखक का अनुभव रहा कि बच्चों को चित्रों वाली किताबें ज़्यादा पसन्द आती हैं, वहीं दूसरे लेख में बच्चों ने बिना चित्र वाली किताबों को भी पसन्द किया। अब आप ही ख़ुद पढ़कर यह फ़ैसला करें कि क्या दोनों ही अनुभवों के निष्कर्ष सही हैं।

यह समझ आम है कि भाषाई कौशलों को एक दूसरे से अलग करके नहीं देखना चाहिए। यह सभी साथ-साथ विकसित होते हैं। कमलेश जोशी का लेख ‘बच्चों के लिखना सीखने में भी सहायक हैं *बरखा* पुस्तकमाला की पुस्तकें’ इसी बात को पुष्ट करता है। वे बताते हैं कि बच्चों के साथ पढ़ना सीखने पर काम किया जा रहा था। इस दौरान जब बच्चों को कुछ लिखने के लिए कहा गया, उनके लेखन में पढ़ी गई रचना के कई अवयव, मसलन वाक्य की संरचना, शब्द, चरित्रों के नाम, आदि, आ गए थे। यानी, जब बच्चे नियमित रूप से पढ़ रहे थे, ये अवयव उनके ज़ेहन में धीरे-धीरे उतरते जा रहे थे।

अलका तिवारी का लेख है ‘किताबों के साथ चलते-चलते...’। उन्होंने कक्षा 7-8 के 20 बच्चों के एक समूह के साथ किताबें पढ़ने को लेकर काम किया। वे बताती हैं कि शुरुआती मदद के बाद बच्चे ख़ुद ही पढ़ने के लिए किताबों का चयन करने लगे, और पढ़ने लगे। लेखिका ने बच्चों से कहा कि वे जो भी किताब पढ़ें, उसका पसन्दीदा या मन को छू जाने वाला हिस्सा सबके साथ साझा करें। बच्चों ने जो कुछ साझा किया उससे लगता है कि उन्होंने किताबों को सिर्फ़ सतही तौर पर नहीं पढ़ा, बल्कि पढ़ी गई रचना के मर्म को भी काफ़ी गहराई से समझा है। बक़ौल लेखिका, हर बार बच्चे मेरे मन में अपनी एक नई तस्वीर बना जाते हैं जो पहले से बेहतर होती है। लेख के अन्तिम हिस्से में बच्चों द्वारा बनाई गई कविता को पढ़ते हुए बच्चों की यह बेहतर और सुन्दर तस्वीर सामने दिखाई पड़ती है।

‘संविधान और संवाद की संस्कृति’ लेख के लेखक अमन मदान हैं। संवाद लोकतंत्र की बुनियाद है। लोकतंत्र के फलने-फूलने के लिए यह ज़रूरी है कि हम एक दूसरे की बात को सुनना व समझना सीखें। लेखक कहते हैं कि संवाद की संस्कृति विकसित की जा सकती है, और इस संस्कृति को विकसित करने के लिए ऐसी अवधारणाओं, कौशलों और नज़रियों को विकसित करने की ज़रूरत है जो बातचीत करने की संस्कृति को बढ़ावा देते हों।

इस अंक में पुस्तकालय की ज़रूरत, पुस्तकों की अहमियत, पुस्तकालय प्रभारी की भूमिका जैसे मसलों पर तीन लेख हैं।

अनिल सिंह अपने लेख 'पुस्तकालय : नज़रिया और कौशल दोनों ही अहम हैं—समुचित प्रशिक्षण ही एकमात्र रास्ता' में पुस्तकालय प्रभारियों के लिए प्रशिक्षण की ज़रूरत पर चर्चा करते हैं। वे अपने अनुभव रखते हुए बताते हैं कि ऐसे प्रशिक्षण मंच शिक्षकों, पुस्तकालय प्रभारियों व किताबों में रुचि रखने वालों में साहित्य का चस्का लगाने में मददगार हो सकते हैं। उनके अनुसार, पुस्तकालय की देखरेख करने वाले व्यक्ति के पास पुस्तकों की समझ और पढ़ने की आदत होना बहुत ज़रूरी है, ताकि बाल पाठकों में भी यह आदत बन सके।

'उम्मीद अभी बाक़ी है : एक अनुभव' लेख नीरज श्रीमाल ने लिखा है। लेख ग्रामीण और ग़रीब अभिभावकों के बारे में बनी हमारी इस मान्यता को तोड़ता है कि वे अपने बच्चों की शिक्षा के लिए जागरूक नहीं होते हैं। लेख यह भी दर्शाता है कि इन जागरूक अभिभावकों तक अच्छी किताबों की पहुँच बनाने के लिए पुस्तक मेले जैसे प्रयास सार्थक हैं।

राजाबाबू का लेख 'और पुस्तकालय चल पड़ा : बड़े काम की छोटी-सी शुरुआत' स्कूल में मौजूद पुस्तकालय को कार्यरत करने के सन्दर्भ में है। स्कूलों में मौजूद पुस्तकालय को बच्चों व शिक्षकों के लिए अर्थपूर्ण बनाने के लिए लेखक ने शिक्षकों के साथ पुस्तकों की अहमियत पर चर्चाएँ कीं। बच्चों पर शिक्षकों का यह विश्वास बनाने के लिए, कि बच्चे किताबें फाड़ेंगे नहीं बल्कि उनको सहेजना भी सीखेंगे, उन्होंने अपने प्रयासों से स्कूल में किताबें उपलब्ध करवाईं। बच्चों को किताबों को पढ़ते और सहेजते हुए देखकर शिक्षकों की यह धारणा टूटी कि बच्चे किताबें फाड़ देते हैं, या खो देते हैं।

ओम प्रकाश विश्वकर्मा और धर्मपाल गंगवार के लेख दर्शाते हैं कि भाषा सीखने-सिखाने में कविता भी एक महत्त्वपूर्ण ज़रिया है।

ओम प्रकाश का लेख है 'कविता शिक्षण और पढ़ना'। यह लेख कक्षा 3 से 5 के बच्चों को कविता की मदद से पढ़ना सिखाने पर है। ये बच्चे पढ़ने के विभिन्न स्तरों पर थे। लेखक ने सभी बच्चों के लिए सीखने के कुछ लक्ष्य निर्धारित किए। मसलन, जो बच्चे पढ़ नहीं पा रहे थे उन्हें कविता को सिर्फ़ सुनना व समझना था, और तब बातचीत के दौरान अपनी प्रतिक्रिया उसपर साझा करनी थी। जो बच्चे कुछ हद तक पढ़ पा रहे थे उनको इस काम के साथ कुछ तुकान्त शब्दों को लिखना था। जो बच्चे ठीक से पढ़ रहे थे उनके लिए उन्होंने तीसरा काम निर्धारित किया। इस काम के लिए उन्होंने ख़ुद क्या तैयारी की, और बच्चों के साथ कविता पर कैसे आगे बढ़े, इसका वर्णन लेख में है।

'कविता शिक्षण के मज़े' लेख के लेखक धर्मपाल हैं। कक्षा 5 के बच्चों के साथ कविता पर बातचीत का विवरण इस लेख में प्रस्तुत है। इसके लिए उन्होंने पाठ्यपुस्तक के इतर एक नई और दिलचस्प कविता को चुना। उनका लेख यह बख़ूबी दर्शाता है कि भाषा सीखने के लिए पाठ्यपुस्तक की नहीं, बल्कि एक उपयुक्त, प्रामाणिक व दिलचस्प पठन सामग्री की ज़रूरत होती है जो पाठ्यपुस्तक के बाहर से भी ली जा सकती है।

'पुस्तकालय से पत्रिका तक...' लेख अरविंद कुमार सिंह ने लिखा है। लेखक कक्षा 4 व 5 के बच्चों में पढ़ने-लिखने के प्रति रुचि विकसित करना चाहते थे। उन्होंने कहानी सुनाने से शुरुआत की। फिर कहानियों पर विभिन्न गतिविधियाँ करते हुए वे आगे बढ़े। लगभग डेढ़ साल तक इस तरह काम करते हुए वे बच्चों में पढ़ने-लिखने के प्रति रुझान विकसित कर पाने में कामयाब रहे। इसके बाद उन्होंने व बच्चों ने मिलकर स्कूल के लिए एक दीवार पत्रिका का प्रकाशन भी किया। बच्चों से हुई बातचीत के आधार पर वे इस तरह के प्रयासों से बन पाने वाली दूसरी पत्रिकाओं के लिए कुछ विषय भी सुझाते हैं।

‘पहाड़, जिसे एक चिड़िया से प्यार हुआ’ इस पुस्तक पर चर्चा प्रभात ने की है। यह पुस्तक चर्चा पढ़ते हुए पुस्तक पढ़ने की तीव्र इच्छा तो होती ही है, और किताब पर लिखी गई इस चर्चा को भी शायद पाठकों का बार-बार पढ़ने का मन करे। पुस्तक की बात को जिस तरह से लेखक ने समझा है, पहाड़ और चिड़िया के संवाद, उनकी मनःस्थितियों व भावनाओं का अपना वर्णन दिया है, वह मन को छू जाने वाला है। शायद इसलिए भी, क्योंकि ऐसी स्थितियों से हम सभी का कभी-न-कभी सामना होता है। अच्छा साहित्य क्या करता है और कैसे करता है, यह सम्भवत: इस लेख को पढ़कर आप महसूस कर पाएँ।

इस अंक में शामिल **साक्षात्कार** का विषय है ‘चिन्तनशील शिक्षक और शिक्षण’। रश्मि पालीवाल का यह **साक्षात्कार** कमलेश जोशी ने किया है। मुख्य प्रश्न, चिन्तनशील शिक्षक किसे कहेंगे, के साथ ही शिक्षक के विकास, सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ और उसकी रचनात्मकता के विकास के कई पहलुओं पर बातचीत हुई। एक मुख्य बिन्दु जो इस चर्चा में रखा गया है, वह है शिक्षक समाज का एक हिस्सा हैं, वे बच्चों के साथ काम करते हैं, लेकिन साथ ही उनका अपना व्यक्तित्व, नज़रिया, भावनाएँ भी हैं। रश्मि यह भी कहती हैं कि शिक्षकों की उपयुक्त मदद कर पाने के लिए शिक्षक-प्रशिक्षकों को ख़ुद पहले काफ़ी समय तक शिक्षण कार्य में संलग्न होना होगा, व उसे समझना होगा। हमें उनके साथ रहना होगा, व उन्हें और उनके विविधतापूर्ण जीवन को कुछ हद तक समझना होगा। शिक्षकों का विकास, उनकी बेहतरी के प्रयास, एक सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया है। यह व्यवस्थागत प्रक्रिया से अलग है।

इस बार का **संवाद** ‘बन्धुत्व की भावना’ विषय पर था। बन्धुत्व, लोकतंत्र का एक और अहम आधार है, और भारतीय संविधान की प्रस्तावना में एक प्रमुख लक्ष्य के रूप में है। संवाद के वक्ताओं ने यह बात रखी कि बन्धुत्व महसूस किया जाता है, और इसके लिए कक्षाओं में, स्कूल में ऐसे क्रियाकलापों और संवाद की जगह हो जिनमें बच्चे बन्धुता को महसूस कर सकें। स्कूल समाज का ही हिस्सा है, और कई बार स्कूल की कोशिशों के बावजूद भी इस तरह की अवधारणाओं पर काम करना मुश्किल होता है। चर्चा में स्कूल और समाज में इस मूल्य पर हो रहे द्वन्द्व के उदाहरण भी रखे गए। साथ ही वक्ताओं का विश्वास था कि कई बार चीज़ें मुश्किल दिखाई देती हैं, लेकिन संवाद से उनका हल भी निकल आता है।

इस अंक में शामिल दो लेखों को आप **ऑनलाइन** पढ़ पाएँगे। सुमन पटैल का लेख ‘सन्दर्भ और स्वतंत्रता बनाते हैं लिखने को आसान’ और हुमा नाज़ का लेख ‘कहानियों के माध्यम से लेखन कौशल विकास के कुछ अनुभव’। इन दोनों लेखों का सारांश आप पत्रिका की हार्डकॉपी में पढ़ सकते हैं। सारांश के साथ ही इन लेखों के सम्बन्धित लिंक और बार कोड दिए गए हैं। यह दोनों ही लेख लिखने पर केन्द्रित हैं।

पाठशाला पत्रिका के लिए अपने ज़मीनी अनुभवों को साझा करने के लिए सभी लेखकों का बहुत-बहुत शुक्रिया। हर लेख अपने स्कूल, कक्षा, बच्चों, शिक्षकों के प्रयास, अपने आसपास के समाज की कहानी कहता है। और इन सच्ची कहानियों को पढ़कर बहुत कुछ अच्छा हो रहा है, यह एहसास भी होता है जोकि आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा भी बनता है।

आशा है, लेखकों, पाठकों, ज़मीनी कार्यकर्ताओं, शिक्षकों के लेख हमें ऐसे ही मिलते रहेंगे। हमेशा की तरह **पाठक चश्मा** के लिए *पाठशाला* में छपे लेखों पर आपकी टिप्पणियों और प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा भी हमें रहेगी।

सम्पादक मण्डल

बच्चों के लिखना सीखने में भी सहायक हैं *बरखा* पुस्तकमाला की पुस्तकें

कमलेश चंद्र जोशी

पढ़ना और लिखना भाषा के बुनियादी कौशल हैं। इन्हें सीखकर बच्चों को अन्य विषयों को सीखने में मदद मिलती है। ये कौशल बच्चों के व्यक्तित्व को निखारने-सँवारने में महती भूमिका निभाते हैं। लेकिन बच्चों को समझ के साथ पढ़ना और लिखना सिखाना अभी भी एक बड़ी समस्या बनी हुई है। इस लेख में एक बालिका द्वारा *बरखा* पुस्तकमाला की किताबें पढ़ते हुए लिखी गई कहानी की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। लेख में बताया गया है कि बच्चों को उनके स्तर और रुचि की अच्छी किताबें पढ़ने को देने पर वे इनसे सहजता से जुड़ते हैं। वे भाषा की संरचना और घटनाओं की बुनावट को पकड़ते हैं, और लेखन में अपने अनुभवों और कल्पनाओं को विस्तार देते हैं। ये सारी बातें बच्चों के लेखन को पुख़्ता करती हैं। *बरखा* पुस्तकमाला, बच्चों के आम जीवन के इर्द गिर्द बुनी ऐसी ही कहानियों का पिटारा है। -सं.

उपयुक्त किताबें बच्चों के पढ़ना सीखने में बहुत मदद करती हैं। इसके अनुभव बहुत-से शिक्षक अपनी बातचीत में बताते रहते हैं। उनका कहना होता है कि अगर किताबें बच्चों के स्तर व रुचि की हों, उनसे बच्चे बहुत सहजता से जुड़ते हैं। इनपर बच्चों से बातचीत भी होती है। ऐसी ही कुछ किताबों के उदाहरण *बरखा* पुस्तकमाला में मिलते हैं। बच्चों को ये किताबें दिलचस्प लगती हैं। वे किताब की घटनाओं पर अपने अनुभव भी जोड़ते हैं। छोटे बच्चे इन किताबों के चित्रों को देखते हैं, अनुमान लगाते हैं, और किताबें पढ़ने की कोशिश करते हैं। इसमें सबसे अच्छी बात यह होती है कि बच्चे बताते हैं कि उन्होंने अभी तक कितनी किताबें पढ़ ली हैं, और उन्हें कौन-सी किताबें अच्छी लगती हैं? इसके माध्यम से वे पढ़ना भी सीखते हैं। ये किताबें बच्चों को लिखना सीखने में भी मदद करती हैं। बस, इसके लिए शिक्षक के पास पुस्तकों को योजनाबद्ध तरह से उपयोग करने की स्पष्टता होना ज़रूरी है।

हाल ही में इसका बहुत अच्छा अनुभव सुनने को मिला। पढ़ने-लिखने में दिलचस्पी रखने वाले शिक्षकों के व्हाट्सऐप समूह में जुड़ी एक शिक्षिका ने एक बच्ची का वीडियो समूह में साझा किया। उस वीडियों में देखने को मिला कि एक बच्ची दिवाली पर एक कहानी अपनी कक्षा में सुना रही थी। शिक्षिका ने बच्चों को अपनी कक्षा में यह कार्य दिया था कि वे दिवाली पर कोई कहानी बनाएँ, और उसे लिखें भी। जब उस कहानी को सुना गया तो लगा, इस कहानी की संरचना तो *बरखा* पुस्तकमाला की किताबों से हू-ब-हू मिल रही थी। मन में विचार आया कि बच्चे किस तरह से कहानियों की संरचना को पकड़ लेते हैं, और हमें पता भी नहीं चलता! ये ज़रूर है कि उसने *बरखा* पुस्तकमाला की किताबों को डूबकर पढ़ा है, और उसकी छाप उसके लिखने पर पड़ी है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पढ़ने की प्रक्रिया लिखने को बहुत अच्छे से पुष्ट करती है। यहाँ ग़ौर करने वाली बात यह भी है कि बच्चों को कहानी लिखने

दिवाली की कहानी

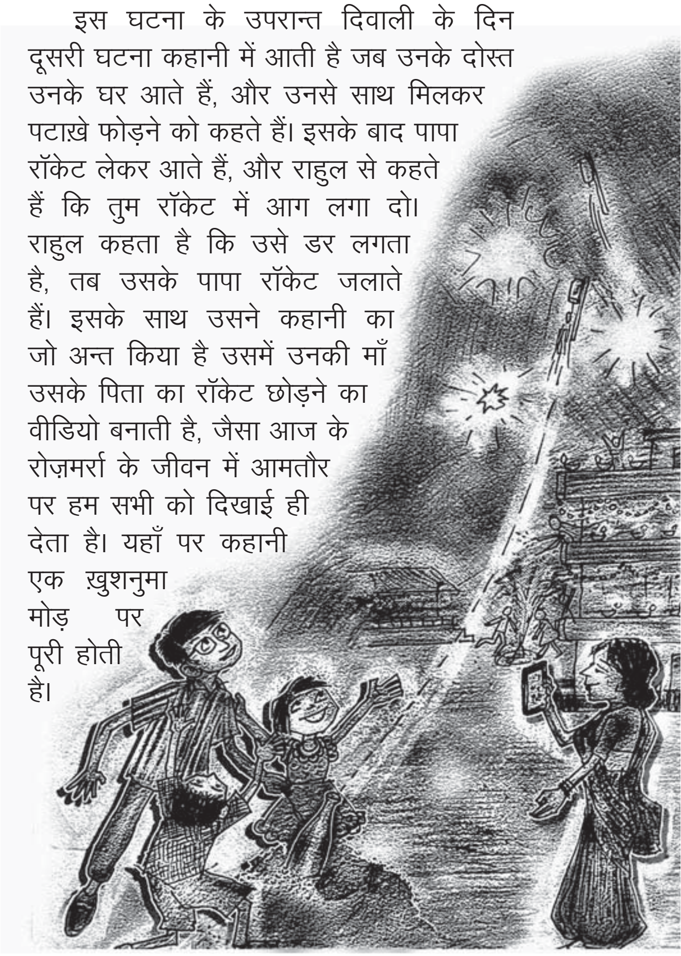
राहुल अपने घर की सफ़ाई कर रहा था।
और उसकी बहन भी सफ़ाई कर रही थी।
तभी उसका भाई बोला, "देखो माँ, मुझे अपनी पुरानी वाली गेंद मिल गई है।"
माँ ने कहा, "चलो, बहुत अच्छा! अब काम में लग जाओ। काजल, बरामदे में झाड़ू लगा दो।"
काजल बोली, "ठीक है।" वह बरामदे में चली गई।
झाड़ू लगाते हुए उसे अपनी पुरानी गुड़िया मिल गई।
वह ख़ुश हो गई। उसने यह बात अपनी माँ को बताई।
माँ ने कहा, "चलो, यह गुड़िया-गुड्डा हटाओ और काम करो। कल दिवाली भी तो है।"
आज दिवाली है। राहुल ने नए कपड़े पहने हैं, और काजल ने भी नए कपड़े पहने हैं।
तभी उनके दोस्त आ गए। उन्होंने काजल और राहुल को बुलाया और कहा, "चलो, पटाख़े फोड़ते हैं।"
उन्होंने कहा, "ठीक है।" तभी पटाख़ों की आवाज़ आने लगी।
पापा को लगा बच्चे पटाख़े फोड़ रहे हैं।
पापा रॉकेट लेकर आ गए। उन्होंने राहुल से कहा, "पटाख़े में आग लगा दो।"
राहुल बोला, "मुझे डर लगता है।"
पापा ने कहा, "चलो, मैं लगाता हूँ।"
पापा ने रॉकेट में आग लगा दी।
रॉकेट ऊपर गया।
माँ ने अपने फ़ोन से वीडियो बना लिया।
(इस लेखन में मात्राओं को ठीक किया गया है)

चाँदनी, कक्षा 4, राजकीय प्राथमिक विद्यालय कटघरिया,
हल्द्वानी, ज़िला नैनीताल, उत्तराखंड

का कोई अभ्यास नहीं कराया गया था। मसलन, पहले यह लिखो और बाद में ऐसा लिखो, आदि।

अब चाँदनी की इस कहानी का विश्लेषण करें तो यह समझ में आएगा कि उसकी कहानी कोई सपाट कहानी नहीं है। इसमें कहानी के तत्त्व हैं, घटनाएँ हैं, क्रमबद्धता है, रोचकता है, भाषा है। कहानी के चरित्रों में राहुल है, उसकी बहन काजल है। काजल का पात्र चाँदनी ने *बरखा* की किताबों से ही लिया है। इसके साथ ही उसके मम्मी-पापा हैं। मम्मी-पापा *बरखा* पुस्तकमाला की कई किताबों में मौजूद हैं। दिवाली का त्योहार, त्योहार के पहले की साफ़-सफ़ाई, पटाख़े, बच्चों के दोस्त, आदि सबको लेकर कथावस्तु रची गई है। कहानी को रोचक बनाने के लिए बीच-बीच में कुछ घटनाएँ होती हैं, जहाँ राहुल को सफ़ाई करते-करते अपनी पुरानी गेंद मिल जाती है, और झाड़ू लगाते हुए काजल को अपनी गुड़िया। ऐसा बच्चों के जीवन में कई बार होता है जब बच्चों को बहुत दिनों बाद अपनी गुम हुई चीज़ें एकाएक मिल जाती हैं, और उनको बहुत ख़ुशी मिलती है। यह हमने भी अपने बचपन के अनुभवों में महसूस किया होगा। काजल जब अपनी खोई हुई गुड़िया अपनी माँ को दिखाती है। माँ कहती है कि चलो, यह गुड़िया-गुड्डा हटाओ और अपना काम करो। कल दिवाली है। यहाँ लग रहा है कि माँ भी अपने कामों में बहुत व्यस्त है। ऐसा अमूमन बच्चों के साथ होता रहता है। इसी तरह से घर की साफ़-सफ़ाई का काम होता है।

इस घटना के उपरान्त दिवाली के दिन दूसरी घटना कहानी में आती है जब उनके दोस्त उनके घर आते हैं, और उनसे साथ मिलकर पटाख़े फोड़ने को कहते हैं। इसके बाद पापा रॉकेट लेकर आते हैं, और राहुल से कहते हैं कि तुम रॉकेट में आग लगा दो। राहुल कहता है कि उसे डर लगता है, तब उसके पापा रॉकेट जलाते हैं। इसके साथ उसने कहानी का जो अन्त किया है उसमें उनकी माँ उसके पिता का रॉकेट छोड़ने का वीडियो बनाती है, जैसा आज के रोज़मर्रा के जीवन में आमतौर पर हम सभी को दिखाई ही देता है। यहाँ पर कहानी एक ख़ुशनुमा मोड़ पर पूरी होती है।



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

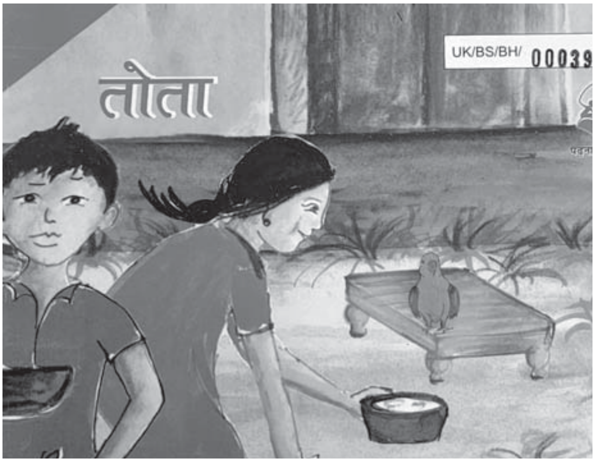


यह कहानी बच्चों के आम जीवन के अनुभवों के आधार पर ही लिखी गई है, और घटनाएँ बच्चों के जीवन से जुड़ी हुई हैं। कहानी में ग़ौर करने की बात यह है कि कहानी में आए बहुत-से वाक्य *बरखा* पुस्तकमाला की किताबों के वाक्यों जैसे ही लगते हैं जिन्हें बच्ची ने इन किताबों को पढ़ते हुए मन-ही-मन कब अंकित कर लिया उसे पता भी नहीं चला, और लिख भी दिया। यहाँ हमें चोम्स्की और बच्चों के भाषा सीखने की जन्मजात क्षमता ध्यान में आती है। इसमें कहा जाता है, “भाषा सीखी नहीं जाती, पकड़ी जाती है।”

बच्ची के इस लेखन में हम यह भी देखेंगे कि इस कहानी को जिस तरह से उसने विजुलाइज़ किया है, उसका फ़ॉर्मेट एक चित्रकथा का बन रहा है। यहाँ बच्ची जो वाक्य बोल रही है मन-ही-मन वह शायद यह भी सोच रही है कि इसके साथ इसका यह चित्र भी होगा जिसमें यह-यह हो रहा होगा। जैसा *बरखा* पुस्तकमाला की किताबों में है, कहानी में एक शुरुआत है, बीच में कुछ घटनाएँ हैं जो कहानी को बाँधे हुए हैं व रोचकता भी लाती हैं, फिर एक अन्त है, कुछ नए शब्द भी हैं। इसमें एक बात थोड़ी खटकती है। जब राहुल को पुरानी गेंद मिलती है तब तो मम्मी कहती हैं, “चलो, बहुत अच्छा! अब काम पर लग जाओ।” पर जब काजल कहती है कि गुड़िया मिली है, मम्मी कहती हैं, “चलो, यह गुड़िया-गुड्डा हटाओ और अपना काम करो। कल दिवाली है।” शायद वह भी काम में बहुत व्यस्त होंगी इसलिए ऐसा बोला होगा। हम कह सकते हैं कि उन्होंने काजल को ऐसा क्यों बोल दिया होगा, जबकि राहुल को नहीं बोला। इसी तरह हम यह भी कह सकते हैं कि कहानी में पटाख़े फोड़ने व रॉकेट छोड़ने की बात आई। यह पर्यावरण के लिए ठीक नहीं है। इन मुद्दों पर बच्चों से बात की जा सकती है। अभी तो बच्ची के द्वारा कहानी बनाने की प्रक्रिया पर हम ग़ौर कर रहे हैं। यह कहानी उन बच्चों की है जो शासकीय प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ते हैं। उन्हीं का जीवन है। वही बच्चे *बरखा* पुस्तकमाला की किताबों में भी हैं। इन्हीं रोज़मर्रा के अनुभवों को चाँदनी ने पकड़ा है।

चाँदनी की लिखी इस कहानी को पढ़कर पता चलता है कि बच्चे *बरखा* पुस्तकमाला की किताबों को पढ़कर पढ़ना तो सीख ही रहे हैं, साथ ही उसमें वे अपने अनुभव व कल्पना को जोड़ते हैं, उनसे कई और कहानियाँ बनती रहती हैं। इस तरह कहानियों पर काम करते हुए बच्चे स्वतः ही पढ़ने के साथ लिखना भी सीख रहे होते हैं। ऐसी प्रक्रियाओं पर शायद हम शिक्षक की भूमिका में उतना ग़ौर नहीं कर पाते। अगर हम ग़ौर करें, हमें बच्चों की बुनियादी साक्षरता के बारे में बहुत-सी बातें और पता चलेंगी जिन्हें हम शिक्षक प्रशिक्षण में कुछ-कुछ सुनते रहते हैं या लेखों में पढ़ते हैं। इनसे हमारी समझ और पुख़्ता होगी।

चाँदनी के अलावा कक्षा में और बच्चों के लेखन के नमूने भी समय-समय पर देखने को मिलते हैं। कुछ बच्चे केवल चित्रों या किसी



वहाँ उन्हें लिखने को प्रोत्साहित किया जा सकता है। जैसे– *तोता* और *मोनी* किताब को पढ़ते हुए बच्चे अपने आसपास के पशु-पक्षियों की सेवा-सुश्रुषा के बहुत-से अनुभव बताते हैं कि उन्होंने किसी पिल्ले, कबूतर, बिल्ली, तोते जैसे पशु-पक्षी की कैसे मदद की; वह कहाँ मिला था; आदि। इसी तरह *मिली की साइकिल* किताब को पढ़ते हुए बच्चे अपने साइकिल सीखने के अनुभव बताते हैं कि कैसे उन्होंने साइकिल चलाना सीखा; उन्हें किसने सिखाया; आदि, और *पका आम* किताब को पढ़ते हुए वे अपने आस-पड़ोस के पेड़ों से आम, अमरूद व जामुन तोड़ने के अनुभव बताते हैं। इन सबसे नई कहानियाँ पैदा होती हैं। इन्हें आगे 'लर्नर जेनरेटेड टेक्स्ट' का रूप दिया जा सकता है, और उनके लिए सामग्री बनाई जा सकती है। यहाँ आवश्यकता होती है बच्चों के साथ उनके अनुभवों पर धैर्य के साथ बात करने और उन्हें लिखने के मौक़े देने की। इससे कक्षा अर्थपूर्ण बनेगी। अगर इस तरह के मौक़े बच्चों को दिए जाते हैं, उनमें रचनात्मक लिखने की प्रवृत्ति विकसित होगी, और उनके लिखने के कौशल में भी सुधार देखने को मिलेगा। अभी कई सरकारी, ग़ैर-सरकारी अध्ययनों में दिखाई पड़ता है कि बच्चे अभी भी समझ के साथ पढ़ने व लिखने में भी पिछड़े हुए हैं। अन्त में, यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि पढ़ना और लिखना बुनियादी कौशल हैं। ये स्कूल ही नहीं, जीवन में भी बच्चे की सफलता का आधार हैं। ये साथ-साथ ही सीखे जाते हैं और एक दूसरे को पुष्ट करते हैं।

विषय के आधार पर कुछ वाक्य लिखते हैं। कुछ बच्चों के लेखन में उनके अनुभव लिखे हुए मिलते हैं। हालाँकि, उनमें अभी पूर्णता नहीं दिखाई पड़ती, और वाक्यों का भी दोहराव होता है। इसी तरह, कुछ के लेखन में कुछ सुनी-सुनाई कहानियाँ दिखाई पड़ती हैं। लेकिन लिखते सभी हैं। इस सबसे यह समझ में आता है कि बच्चों को लिखने के लिए प्रोत्साहित करने में शिक्षक की भूमिका बेहद महत्त्वपूर्ण होती है। वे बच्चों के साथ किसी विषय पर कितनी बात करते हैं, और कितना उन्हें सोचने का मौक़ा देते हैं। इसके साथ शिक्षकों का अन्य किताबों को पढ़ना, और उनपर बात करना भी ज़रूरी होता है। सबसे महत्त्वपूर्ण होता है, बच्चों के लिखे हुए पर बात करना, और आगे बेहतर करने के लिए सुझाव देना। इससे बच्चे लिखना सीखने की प्रक्रिया में आगे बढ़ते हैं।

बरखा पुस्तकमाला की किताबों पर बच्चों से बात करते हुए उसमें कई ऐसे ठीहे मिलते हैं जहाँ बच्चे उसमें अपने अनुभव जोड़ते हैं।

इस लेख को लिखने के लिए भावना पाण्डेय, सहायक अध्यापिका, राजकीय प्राथमिक विद्यालय कटघरिया, हल्द्वानी, नैनीताल द्वारा प्रेषित सामग्री से प्रेरणा मिली है। उनका बहुत आभार।

कमलेश चंद्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों– शिक्षक शिक्षा, बाल साहित्य, प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता आदि में गहरी रुचि। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर में कार्यरत।
सम्पर्क : kamlesh@azimpremjifoundation.org

किताबों के साथ चलते-चलते...

अलका तिवारी

साहित्य, बच्चों को निर्दोष ख़ुशियाँ देने, उनके व्यक्तित्व को सँवारने, और उनमें ख़ुद-से पढ़ने की आदत बनाने का एक मुख्य ज़रिया है। इस लेख में लेखिका बच्चों के साथ किताबों पर काम करने के दौरान कविता पढ़ाने के क्रम में ऐसे तरीक़े अपनाती हैं जिनसे बच्चे जीवन की जटिलताओं और वास्तविकताओं को जान-समझ सकें। वे समाज में फैली असमानता, हिंसा, जंग, भेदभाव, नफ़रत और ग़ुलामी जैसी विसंगतियों पर चर्चा करते हैं, और इनके कारणों को पहचानने व समाधान में अपनी भूमिका तलाशते हैं। बच्चे कविता-कहानियों के साथ गहराई से जुड़ते हैं, और वैचारिक रूप से समृद्ध होते हैं। लेखिका द्वारा अपनाए गए ये तरीक़े और अनुभव इस लेख में दर्ज हैं। -सं.

किताबें हर उम्र में, एक अच्छे पाठक के रूप में तो गढ़ती ही हैं, साथ ही भाषाई नज़रिए से भी परिष्कृत करती हैं। लेकिन यह जानने के बावजूद, कि किताबें पढ़ने वालों को अलग-अलग मायनों में परिष्कृत कर सकती हैं, हर उम्र के लोगों में किताबों के उपयोग का दायरा काफ़ी सीमित है।

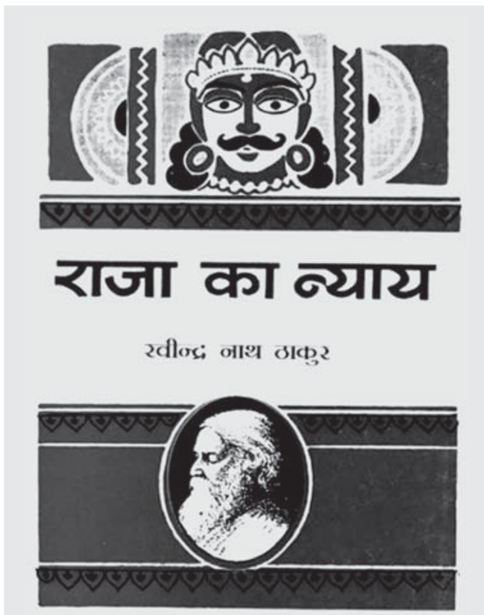
एक शिक्षक के नज़रिए से देखा जाए तो किताबों के मायने बहुत व्यापक और विस्तृत हैं। बच्चों के साथ मैंने लाइब्रेरी की किताबों को पढ़ना सिखाने पर दो छोटे समूहों में काम किया। एक समूह में 12 बच्चे थे और दूसरे में आठ। इस काम को करते हुए समझ बनी कि किताबों को बच्चों के साथ कैसे काम में लिया जाए।

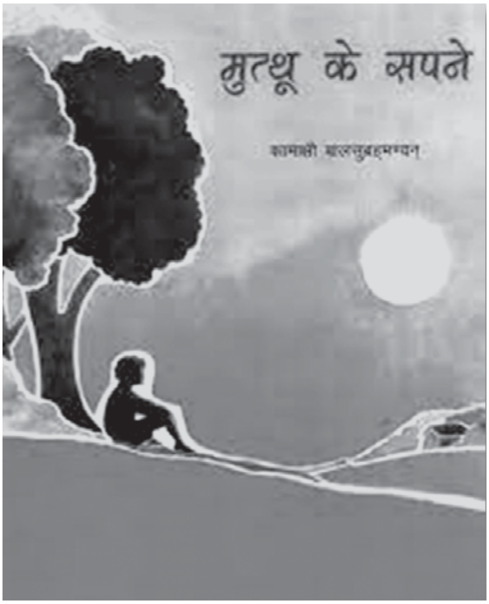
बने हुए समूहों के अनुसार ही यह निर्धारित होता कि काम क्या होगा। कुछ बच्चों को उनके स्तर के अनुसार पुस्तक चुनने में मदद की जाती, वहीं कुछ को ऐसी पुस्तकें दी जातीं कि वे बस पढ़ने का मज़ा लेना सीख सकें। कुछ बच्चों को केवल ये कहकर छोड़ना होता कि तुम ही चुनो तुम्हें क्या पढ़ना चाहिए। पढ़ने के बाद, इसमें हम सबके लिए क्या है, ये हम सब तुमसे सुनेंगे! क्योंकि भरोसा था कि उन्हें ये ज़िम्मेदारी लेना बख़ूबी आता है। और ये बच्चे इन्हें पढ़ते, और पढ़ने के बाद अपनी-अपनी समझ के अनुसार पढ़ी हुई पुस्तक की घटना, कहानी, इसके मूल भाव व इसपर अपने विचारों को समूह में साझा करते। जैसा कि मैंने बताया कभी-कभार कुछ समूहों के बच्चों के लिए अपनी कक्षा के स्तरानुरूप पुस्तक चुनने का निर्देश होता, पर साथ ही बच्चों को अपनी पसन्द से चुनने का मौक़ा भी होता। और तब कई बच्चों के विचारों के ज़रिए कुछ विषयों पर सार्थक चर्चा भी होती। कुछ बच्चों को पढ़ने का मज़ा लेने के लिए पढ़ना होता, वहीं कुछ इस मज़े के जादू को और शिद्दत से डुब्बक-डूब होकर तैरने-उबरने की क़ाबिलियत के लिए पढ़ते, तो कुछ भाषाई दृष्टि से अलग-अलग लेखन शैलियों से रूबरू होने और ख़ुद कह पाने का हुनर गढ़ने के लिए पढ़ते। ख़ैर, इस दौरान मुझे मेरे इन दोस्तों को थोड़ा और क़रीब से पढ़ पाने का मौक़ा मिला। किताबों के साथ काम के इस



सफ़र के दौरान हुए अवलोकनों से कुछ इन अंशों को साझा कर रही हूँ, जो बच्चों के प्रति मुझे और उम्मीद से भरते हैं...

- कक्षा 8 की अंकिता ने खिलाड़ी दीपा कर्माकर की जीवनी, इस पुस्तक को पढ़ने के लिए चुना। इससे पहले कोई भी बच्चा इस पुस्तक को नहीं चुनना चाहता था। दो दिन बाद जब अंकिता ने इस पुस्तक के अनुभव समूह में साझा किए, तब सभी को पता चला कि सामान्य परिवार की एक आम-सी लगने वाली लड़की अपने सपने के लिए किस तरह नियमित अभ्यास और खान-पान का ध्यान रखते हुए अपने भीतर खेल कौशल को विकसित करती है। लड़कियों के प्रति वह लोगों की सोच को भी चुनौती देती है। जब अंकिता ने इस किताब के बारे में बताया, तब बातचीत में बच्चों ने यह केन्द्रित किया कि जीवन का कोई भी काम हो, वह अनुशासन की माँग करता है। अनुशासन से हम ख़ुद को व्यवस्थित करते हैं, और किसी भी सपने को हासिल कर सकते हैं। इस बातचीत के बाद समूह के हर बच्चे ने इस पुस्तक को बारी-बारी से पढ़ा। मेरे लिए यह अनुभव बड़ा चकित करने वाला था कि आख़िर इस पुस्तक के प्रति बच्चों का नज़रिया एकदम उलट कैसे हो गया! यहाँ मैंने पाया कि बातचीत के ज़रिए बच्चे पुस्तक के मूल भाव को समझ पाए, ख़ुद से जोड़ पाए, और यह पुस्तक बहुतों के मन के बिलकुल क़रीब हो गई।
- रवीन्द्रनाथ ठाकुर (टैगोर) द्वारा लिखित *राजा का न्याय* पुस्तक रंगविहीन और शब्दों से भरी थी। और शायद इसी कारण बच्चों को आकर्षित करने में काफ़ी दिनों तक असफल रही। कुछ दिनों बाद कक्षा 6 की सपना ने इस पुस्तक को चुना और पढ़ा। सपना ने इस पुस्तक से पढ़कर दो कहानियाँ सुनाईं। वह श्रोताओं के मन में कहानियों के ज़रिए जीवन में कठिनता-भरे निर्णय ले पाने में सक्षम होने, दूसरे के जीवन की कठिनाइयों को महसूसे कर सकने और न्याय की ज़रूरत को अपने शब्दों के ज़रिए उभार पाई। इसके बाद यह पुस्तक भी हर बच्चे के हाथ में पहुँची, और बड़े बच्चों ने भी इस पुस्तक को उत्साह के साथ पढ़ा।
- एक छोटी-सी पुस्तक *मुत्थू के सपने* थोड़ी पुरानी मटमैली-सी हल्के रंग की किताब थी जिसे हर कोई देखकर

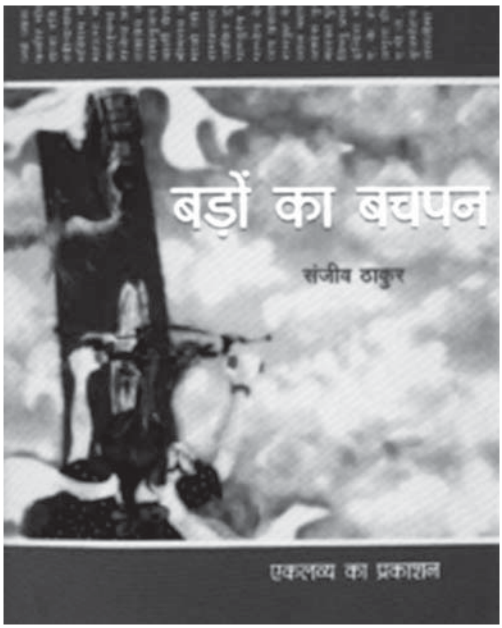




कोने में छोड़ देता, पर आकाश ने इसे पढ़ना चाहा। दो से तीन बार उलट-पलट कर देखने के बाद आकाश ने इसे अपने साथ ले जाने का निर्णय लिया। अगले दिन इस सवाल के साथ आकाश ने समूह में अपनी बात रखी, “दीदी, क्या सारे सपने पूरे हो सकते हैं?” आकाश के इस सवाल ने सभी का ध्यान खींचा। बातचीत हुई कि सपने पूरे हो सकते हैं। लेकिन यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि सपने में कितनी वास्तविकता है, व्यवहारिकता है, और उसे पूरा करने के लिए क्या हमने अपनी ओर से पूरी कोशिश की है!

आकाश ने इस पुस्तक की पूरी कहानी साझा करते हुए कुछ बिन्दुओं का ध्यान केन्द्रित किया : “दीदी, मुत्थू अकेला होकर भी कभी अकेला नहीं होता था! उसके पास सोचने के लिए ढेरों बातें होती थीं। पर हम ऐसी बातों से जल्दी ही बोर हो जाते हैं, न!” मुझे लगा, शायद इस बात के ज़रिए आकाश हम सबपर सवाल उठा रहा था। उसके मन में यह सवाल भी था कि अपने सवालों में ही खोया रहने वाला मुत्थू क्या बना होगा! पर अब आकाश के पास इस सवाल के कई जवाब भी थे।

- कक्षा 7 की अर्चना ने प्रेरित करने पर अपने लिए संजीव ठाकुर द्वारा लिखित *बड़ों का बचपन* पुस्तक को पढ़ने के लिए चुना। पुस्तक के मोटे व बहुत बड़े रूप में दिखने के चलते अर्चना ने अनमने ढंग से इसे ले तो लिया, पर अगले दिन उसमें ग़ज़ब का उल्लास था। उसने बेहद मासूमियत के साथ यह बात रखी, “हमारी तरह बड़े लोगों का बचपन भी इतना मज़ेदार होता होगा, ये तो मैंने सोचा ही नहीं था!” उसने अपने शब्दों के ज़रिए चार्ली चैपलिन के जीवन संघर्ष को उभारा, “अपनी मरती हुई माँ को देखकर भी उसे स्टेज पर मुस्कुराना पड़ा। वो ऐसा कैसे कर पाया होगा! बिना बोले सबको हँसाने वाला चार्ली ख़ुद कितने दुःख में रहा होगा!” अर्चना के शब्द व चेहरे के हाव-भाव श्रोताओं को बाँध पाने में सफल रहे। यहाँ अर्चना इस पठन





के ज़रिए जीवन की जटिलता और वास्तविकता के पलड़ों के बीच तोल-मोल करती नज़र आई।

अर्चना से प्रेरित होकर निकिता ने भी इसी पुस्तक से एक संस्मरण 'मैं माँ के सपने पूरे करना चाहता था' पढ़ा। अगले दिन निकिता ने समूह में अम्बेडकर की बचपन की घटनाओं को साझा किया। अम्बेडकर ने अपने बचपन में कितना भेदभाव सहा, इस मूल भाव ने सभी बच्चों को मंत्रमुग्ध-सा कर दिया। फिर समूह में इस पूरे अनुभव को दोबारा पढ़ा गया। अर्चना भाव-विभोर होकर बोली, "जूते-चप्पलों के पास बैठकर पढ़ने की शर्त ने नन्हे अम्बेडकर को कितना दुःख दिया होगा! माँ यह सोचकर मन-ही-मन रो पड़ी।" विश्लेषण करते हुए अर्चना कहती है, अम्बेडकर फिर भी वहाँ बैठकर पढ़ने लगा, क्योंकि उसे पता था कि इस अपमान के बारे में सोचने के बजाय पढ़ना ज़्यादा ज़रूरी है! पर उन माता-पिता को यह सोचकर कैसा लगा होगा कि उनके बच्चे के पास दूसरे बच्चों के जूते-चप्पलों के नज़दीक बैठकर पढ़ने के अलावा और कोई चारा ही नहीं है! उनका दिल तो इस दुःख से फट ही गया होगा! अर्चना के शब्द सभी पर अपना प्रभाव छोड़ रहे थे। सरमा बोली, "दीदी, मैं भी पहले ऐसे ही सोचती थी और दूसरों को छोटा समझती थी। लेकिन जब हम स्कूल में दूसरों के साथ खाना खाते, मुझे भी अच्छा लगने लगा। मुझे तो पहले पता ही नहीं था कि सब बराबर हो सकते हैं, और ये तो बहुत अच्छी बात है।" इसके बाद अन्य बच्चों ने भी अपने अवलोकन जोड़े, जिनमें उन्होंने पाया कि लोग किस-किस तरह से भेदभाव करते हैं।

बच्चों ने ऐसी कई किताबें चुनीं और पढ़ीं। सभी बच्चों ने जब कोई-न-कोई पुस्तक पढ़ ली होती, तब यह बात होती कि अब जो भी पढ़ा है, उसमें से अपना कोई पसन्दीदा हिस्सा, जो मन को छूने वाला लगा हो, उस हिस्से को सभी के

साथ सभी के साथ अपने शब्दों में साझा करने का मौक़ा उन्हें ज़रूर देना है।

बच्चों को किसी कविता संग्रह से 'मेरी दुनिया के तमाम बच्चे' कविता मिली। जब आकाश ने इसे पढ़कर समूह में सुनाया, सभी को ये कविता अच्छी लगी। कविता संग्रह से लेखक अदनान द्वारा लिखित यह कविता पढ़ने के बाद आकाश, यामिनी, बुल्ला, कुलदीप, सपना, आदि बच्चों ने उसपर अपनी समझ को कुछ इस तरह साझा किया कि आख़िर में सुनने वाले भी उस कविता का हिस्सा होने लगे।

- आकाश : "ये कविता हमे भेदभाव के बारे में बताती है। नफ़रत के बजाय प्यार से जीने की बात करती है। अपनी ग़लती को मानने की सलाह देती है। जब लोगों के मनों के बीच दीवार खड़ी हो जाती है, उसे गिराने में बन्दूक काम नहीं आ सकती।
- पवन : ये कविता बच्चों के बारे में है। बच्चे कभी नफ़रत नहीं करते, बड़े उन्हें नफ़रत करना सिखाते हैं।"
- यामिनी : "जो लोग बच्चों को नफ़रत करना सिखाते हैं, ये बच्चे उन नफ़रत की दीवारों में छेद करेंगे और उन छेदों में प्यार भर देंगे। माता-पिता के झगड़ों को मिटा देंगे, छोटे-बड़ों के मन को प्यार से भर देंगे, और बड़ों के मन से जात-पात के कारण बनी दूरियों व भेदभाव को मिटा डालेंगे।"
- कुलदीप : "अभी हमारे यहाँ मीणा जाति के लोगों को ज़्यादा आरक्षण मिल रहा है, इसलिए ये लोग दूसरों को चिढ़ाते हैं कि हमारी तो जल्दी नौकरी लग जाएगी। ये बात सुनकर दूसरों को अच्छा नहीं लगता, और वे उनसे नफ़रत करने लगते हैं। इस तरह जब किसी एक देश के लोग दूसरे देश पर अपने बारूद के टैंक छोड़ देंगे, ये बच्चे उन टैंकों को जाकर बालू से भर देंगे ताकि वो हथियार काम के न रहें, बेकार हो जाएँ। बन्दूकों को कहीं मिट्टी में छुपाकर आ जाएँगे ताकि कोई किसी को नुक़सान न पहुँचा पाए।"

कुछ अन्य बच्चों की प्रतिक्रियाएँ भी कुछ इस तरह आईं। मसलन,

- यह कविता हमें भेदभाव के बारे में बहुत कुछ कहती है। हम मिलजुलकर कैसे रहें, नफ़रत के बजाय प्यार के रास्ते बनाएँ, जब हमारे मन में दूसरों के लिए दीवारें खड़ी हो जाती हैं, वो बन्दूकों से नहीं टूटने वालीं। उन्हें ख़त्म करने के लिए ज़रूरी है कि हम मन से अपनी ग़लतियों को मानें;
- ये कविता हमें बच्चों के बारे में यह बताती है कि बच्चे अपने बड़ों को देखकर छोटे-बड़ों में, जात-पात में, लड़का-लड़की में भेदभाव करना सीख जाते हैं। प्यार और समझदारी-भरा व्यवहार ही इन दीवारों को खोखला करेगा न कि कोई हथियार;
- दुश्मनी भी कई तरह की होती है, ग़रीब-अमीर, छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, आदि;
- अलग-अलग जात के होने से लोग एक दूसरे के लिए मन में दूरियाँ रखते हैं, जिनके पास ज़्यादा पैसा और बड़ा घर होता है, वे मज़दूरी या बेलदारी करके जीवन यापन करने वालों को नफ़रत से देखते हैं, अपमानित करते हैं। उन्हें बात-बात पर नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं;
- कोई देश ज़्यादा तरक़्क़ी कर रहा होता है तब वह दूसरे देश के लोगों का फ़ायदा उठाता है। ये दूसरे देश के लोगों को कम पैसों में अपने यहाँ



काम देकर उनका फ़ायदा उठाते हैं। एक तरह से वे देश उन्हें अपना ग़ुलाम बनाना चाहते हैं। ऐसे देश अपने फ़ायदे के लिए दूसरों को बन्दूकें और बारूद के टैंक सस्ते में बाँट रहे हैं। इस सब में उन्हें तो बस अपना फ़ायदा दिख रहा होता है, भले ही इससे पूरी दुनिया का नुक़सान हो। पर बच्चे उनके मंसूबों पर पानी फेर देंगे। वे इन सब हथियारों को मिट्टी में छुपा देंगे, ताकि कोई किसी को न तो नुक़सान पहुँचा सके न ही किसी की जान ले सके; आदि।

मैं हैरान थी कि बच्चे कविता को समझ गए थे और उसपर अपने इतने सधे हुए से विचार रख रहे थे!

मैंने उनसे पूछा, "कवि अदनान ने अपनी बात लिखी। अब यही बात तुमसे पूछी जाए कि तुम सब हमारी दुनिया के बच्चों के बारे में क्या-क्या सोचते हो। और जब तुम बच्चों के बारे में सोचने लगते हो, तुम क्या महसूस करते हो?" इस प्रश्न पर हर बच्चे ने कुछ-न-कुछ व्यक्त किया :

हम बच्चे,

बुरा करने वाले के साथ भी

करेंगे अच्छा व्यवहार।

लोगों के बुरे मंसूबे को नाकामयाब कर देंगे

सड़कों में गड्ढे बना देंगे

ताकि ड्रग्स से भरे ट्रक अटक जाएँ वहीं

न जा सकें एक से दूसरे शहर तक

ताकि ड्रग्स का ज़हर सब जगह न फैला सकें।

बच्चे किसी से नफ़रत नहीं करते,

बड़े लोग उन्हें नफ़रत करना सिखा देते हैं।

उन्हें पता ही नहीं चलता है

कि वे कितना ग़लत कर रहे हैं।

जब हमारे मन में दूसरों के लिए दीवारें खड़ी हो जाती हैं

वो बन्दूकों से नहीं टूटने वालीं,

उन्हें ख़त्म करने के लिए ज़रूरी है

हम मन से अपनी ग़लतियों को मानें।

पर हम बच्चे उन नफ़रत की दीवारों में

एक दिन छेद करेंगे

और उनमें प्यार भर देंगे।

लड़ाई से मन में दीवार खड़ी हो जाती है,

बच्चे बड़ों की इन मन की दीवारों को तुड़वाकर

उन्हें गले मिलवा देंगे एक दिन!

फिर सब नफ़रत की दीवारें ढह जाएँगी।

भेदभाव मिटाने के लिए सब उलट-पुलट कर देंगे

किसी को बुरा नहीं बनने देंगे

खुशहाली लाने के लिए

इन हथियारों को खिलौनों में बदल देंगे।

हम बच्चे दुनिया की

हर चीज़ को महसूस करना सीखेंगे,

जिनपर बड़े ध्यान नहीं देते

और रोक देते हैं हमें

जब पूछते हैं कुछ भी

चुप रहने को कह देते हैं हमें

और हमारे सवालों को भी!

जाने क्यों नहीं देना चाहते वो हमारी सब बातों का जवाब!

पर हम रुकेंगे नहीं

हर किसी को अपना दोस्त बनाएँगे,

जो हमारी जात के नहीं हैं,

यह बात भूलकर हम

उनके दर्द जानने की कोशिश करेंगे,

उनकी तक़लीफ़ों को उनके मन से बाहर निकाल लाएँगे,

उनके मन की सब बात हम जान जाएँगे

और फिर उनकी नफ़रत में

थोड़ा हमारा प्यार मिला देंगे।

जिनमें दुश्मनी है

उनके बीच कुछ ऐसा कर देंगे

कि दुश्मनी को भुलाकर

दोस्तियाँ बनाने पर मजबूर हो जाएँ।

पर हम बच्चे तो हर किसी को ज़रूर पानी पिलाएँगे,

हम जाति, धर्म की परवाह नहीं करेंगे

सबसे मिलेंगे बेफ़िक्र होकर

भेदभाव की दीवारों में छेद बनाकर सबको बताएँगे

कि देखो इन छेदों के आर-पार

सब जगह दुनिया, लोग, हम सब

एक जैसे ही तो हैं

फिर हम सबसे बोलेंगे,

उन्हें एक समान समझकर,

गले लगाते जाएँगे,

इससे दुनिया की सारी जंग रुक जाएँगी।

जो हमें नफ़रत करना सिखा रहे हैं,

हम उन्हें प्यार में बदल डालेंगे

हिस्सों में बँटी हुई दुनिया को हम फिर से मिला देंगे

ताकि सबको पता चल जाए

इस ख़ूबसूरत धरती पर हवा, धूप, रोशनी सबकी है।

हथियारों को बालू भरकर मिट्टी में दबा देंगे ताकि सब बेकार हो जाएँ,

यहाँ जंग का नाम न रहे,

कोई किसी को उजाड़ न सके,

जहाँ कोई किसी अपने को नहीं खोएगा।

जहाँ बँटवारा नहीं होगा, सब होंगे एक समान

सब अपने दोस्त ख़ुद चुन सकेंगे,

एक दूसरे से खुल सकेंगे,

ले सकेंगे सब अपने फ़ैसले ख़ुद,

दूसरों से लड़ाई के बाद भी हम जाएँगे उनके पास,

अपने लिए माफ़ी माँगने,

बदले में दोस्ती देने,

और पाने उनके दिलों में अपने लिए छोटी-सी जगह।

समझेंगे बच्चे सारी ही दुनिया को अपना घर,

चले जाएँगे वे किसी के भी पास,

मन की दीवारों को मिटाकर

बनाएँगे इस धरा को और भी सुन्दर,

जहाँ न कोई जंग होगी

न कोई बँटवारा!

बच्चों की इन प्रतिक्रियाओं को एक समेकित रूप में देखने पर मैं एक बार फिर हैरान हुई। काम के बीच जब भी बच्चों को सुन पाने का मौक़ा बनता है, हर बार इस मौक़े को मैं ले लेना चाहती हूँ। जब भी बच्चों को सुनती हूँ, वे हर बार मुझे सोचने पर मजबूर कर जाते हैं। मेरे मन में अपनी एक नई और अलग तस्वीर बना जाते हैं जो पहले से और बेहतर होती है। इस कविता में बच्चों ने बड़े गहरे निष्कर्ष गढ़ लिए। बन्दूकों को कहीं मिट्‌टी में छुपाकर आ जाएँगे, ताकि कोई किसी को नुक़सान ही न पहुँचा पाए। साथ ही ये बात, "बच्चे कभी नफ़रत नहीं करते, बड़े उन्हें नफ़रत करना सिखाते हैं," कहते हुए वे दुनिया में ऐसी विसंगतियों के लिए बड़ों को भी ज़िम्मेदार पाते हैं जो शायद हम सबका ही यथार्थ है। शायद सभी बच्चे इन कठोर सच्चाइयों को भाँप लेते हैं। ऐसे में, मैं ख़ुद को इस उम्मीद से बँधा पाती हूँ कि बच्चे इस दुनिया को बेहद ख़ूबसूरत सम्भावनाओं से भर सकते हैं। शायद हम बड़े ही जाने-अनजाने, उन्हें ये मौक़े देने में नाकामयाब रहते हैं। बच्चे दुनिया को सम्पूर्णता में देख पाते हैं। इस समझदारी-भरे एहसास को हासिल करने के लिए उनके वयस्क होने का इन्तज़ार करना ज़रूरी नहीं है। वे बहुत बारीक़ी से परत-दर-परत बड़ों की दुनिया की जटिलताओं को समझ लेते हैं और उसी संजीदगी के साथ उसपर ग़ौर करते हैं। कई बार लगता है मुझे भी बच्चों से ये लचीलापन सीखना चाहिए जो गाहे-बगाहे बड़े होने के इस दौर में हम कहीं खो देते हैं।

संवाद के इसी क्रम को अर्चना ने यह कहकर समेकित किया, "मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि परदे पर पूरी दुनिया को हँसा देने वाले मशहूर किरदारों के जीवन में भी ऐसा होता होगा! हमारे बड़ों के जीवन में भी वैसा ही कुछ घटता है जो हमारे साथ अभी हो रहा है, पर हम उसपर ज़्यादा ध्यान नहीं देते। फिर तो हम भी अपने बारे में लिख सकते हैं। लेकिन जब हम लिखने बैठते हैं, हमें याद ही नहीं आता कि हम क्या लिखें?" इसपर समूह में यह बात हुई कि कुछ भी ऐसा, जो हम सबको बताना चाहते हैं, कह देना चाहते हैं, जो घटना हमारे मन के बेहद क़रीब रही है, हमें उदास कर जाती है, ख़ुशी देती है, या बार-बार सोचने पर मजबूर करती है, ऐसे अनुभव या घटनाएँ जिनके बारे में हमारे मन में सवाल उठते हों, कुछ भी ऐसा जिसके बारे में हम कुछ ज़ाहिर करना चाहते हों चाहे वह हमारी आपत्ति



ही हो, आदि सबकुछ लिखा जा सकता है। पर ज़रूरी यह है, हम जो भी ख़ुद लिखें उसे ख़ुद से पढ़कर ज़रूर देखें। हम लेखक भी बनें और पाठक बनकर भी ज़रूर देखें, तब अपने लेखन के बारे में ज़रूर पता चलेगा। इसके बाद कुछ बच्चों ने ख़ुद से कुछ लिखकर देखने का प्रयास किया और समूह में सभी के साथ साझा किया।



बच्चों की मान्यताएँ

किताबों की दुनिया में दाख़िल होने पर जब बच्चे किताबों को छूते, पलटते, महसूस करते हैं, तब कहीं-न-कहीं वे उन्हें अपने क़रीब पाते हैं। काम के दौरान पुस्तकों से दोस्ती के इस दौर में बच्चों की कुछ अपनी मान्यताएँ भी टूटती-सी नज़र आईं–

- हर सुन्दर चित्रों वाली किताब या सुन्दर दिखने वाली किताब हमेशा ही अच्छी हो, यह ज़रूरी नहीं है। बिना चित्रों वाली किताब, जिसे हम पहले बेकार-सी मानकर छोड़ देते थे, भी काफ़ी मज़ेदार हो सकती है।
- बिना चित्रों वाली किताब हमें ऊपर से देखने पर उबाऊ लगती है, और कभी-कभी हम उसे बहुत कठिन मानकर छोड़ देते हैं, लेकिन जब पढ़ना शुरू करते हैं तब पता चलता है कि ये तो बिलकुल कठिन नहीं थी।
- अंकिता कहती है, "हमें अलग-अलग तरह की किताबें पढ़नी चाहिए जिससे हमें पता चल सके कि लोग कितनी अलग-अलग तरह से लिखते हैं!"
- सरमा मानने लगी है कि किताबों में केवल कहानी, कविताएँ ही नहीं होती हैं। इनमें दुनिया की अलग-अलग जगहों, अलग-अलग लोगों के जीवन के क़िस्से भी मिलते हैं।
- मानवी बताती है, "हम लोगों का जीवन भी तो एक कहानी की तरह ही चलता है।"
- बुल्ला कहता है, "हम हर जगह जा तो नहीं सकते, पर किताबें हमें वहाँ ले जा सकती हैं।"
- आकाश का मानना है, "अगर किताबें न होतीं, हम कुछ लोगों से कभी न मिल पाते। किताबें हमें उन लोगों से भी मिला देती हैं जो इस दुनिया में नहीं हैं।"

बच्चों की ये सारी बातें मुझे सफ़दर हाशमी की कविता 'किताबें करती हैं बातें' को साकार करती नज़र आती हैं।

एक शिक्षक की नज़र से

बच्चों के साथ रहे ये अनुभव इस समझ को और मज़बूती देते हैं कि पुस्तकें सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में कई सम्भावनाएँ खोल

देती हैं। इनमें बच्चे अपनी रुचि, अपनी गति के साथ चलते अपनी समझ को विस्तार देने की ओर बढ़ते हैं, और वैचारिक रूप से समृद्ध होते हैं। बच्चे पुस्तकों के मूल भाव या इनसे जुड़ते जीवन के क़िस्सों को अपने शब्दों में पिरोकर प्रस्तुत करने का मौक़ा लेते हैं। बच्चों के अनुभव चिन्तन को जन्म देते हैं जिसमें बच्चे अपने विचारों को तार्किकता की कसौटी पर रखकर तोलते हैं, ख़ुद के सही-ग़लत, उचित-अनुचित होने के भाव को गढ़ते हैं, कई बार ख़ुद पर और दूसरों पर सवाल उठाते हैं, घटनाओं में छुपी संवेदनाओं और मर्म को ढूँढ़ते हैं, उन्हें पढ़ना सीखते हैं, अपने लिए नए विचार गढ़ते हैं और उनके तर्क भी। यही नहीं, कहते समय शब्दों के चुनाव में भी उनका अपना प्रभाव दिखता है। ये सारे अनुभव मुझे बच्चों को और सहृदय होते हुए देख पाने का मौक़ा देते हैं।

विशाल, जीवों के प्रति संवेदनशील नज़र आता है। पवन, समाज के जटिल ताने-बाने से उठी टीस को महसूस करता है। वहीं बुल्ला जीने के दायरों की ज़रूरत को रखता है। काम की इस पूरी प्रक्रिया में मुझे बच्चों के और भी क़रीब जा पाने का मौक़ा मिला, और बच्चों में सबकुछ कह देने की सहजता को मैं काफ़ी क़रीब से महसूस कर पाई। यहाँ हम बच्चे और टीचर साथ में बैठकर खाना खाते हैं, कोई किसी के साथ भेदभाव नहीं करता। मुझे लगता है बच्चे वो सब पढ़ लेते हैं जो हमारे आसपास चल रहा है। बच्चे बेहतर इंसान कैसे बन पाएँ, इसमें हम सभी बराबर के हिस्सेदार हैं। लेकिन एक औपचारिक संस्था होने के नाते स्कूल की यह एक अहम ज़िम्मेदारी बन जाती है कि हम इस दिशा में कितना आगे बढ़ पाए हैं, ये सवाल हम ख़ुद से पूछते रहें। बतौर शिक्षक मुझे यह लगता है कि स्कूल की प्रक्रियाएँ इसमें काफ़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अगर हम बच्चों को उनकी उम्र, मानसिक स्तर, रुचि के अनुसार कुछ मज़ेदार चुनौतियाँ दे पाएँ, उनकी भागीदारी को काफ़ी हद तक बढ़ाया जा सकता है। साथ ही, इस दिशा में हम वयस्कों का बच्चों के प्रति नज़रिया भी काफ़ी मायने रखता है, जिससे हम उनपर भरोसा कर पाएँ, उन्हें उनकी कमज़ोरियों और क़ाबिलियत के साथ वैसे ही स्वीकार कर पाएँ, जैसे वे हैं। तभी बात बनती नज़र आती है।

अलका तिवारी ने शिक्षा में अपने काम की शुरुआत ज़िला बारां, राजस्थान में दिगंतर संस्था द्वारा चलाए जा रहे सहरिया समुदाय के बच्चों से जुड़े सन्दर्भशाला प्रोजेक्ट से की। फिर उन्होंने बोध शिक्षा समिति में विज्ञान शिक्षक के रूप में कार्य किया। वे 2012 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में विज्ञान की टीचर एजुकेटर के रूप में जुड़ी हैं। अलका 2019 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के टोंक स्कूल में विज्ञान और भाषा के शिक्षक के रूप में कार्य कर रही हैं। उन्हें शुरुआती कक्षाओं के बच्चों के साथ काम करना अच्छा लगता है।

सम्पर्क : alka.tiwari@azimpremjifoundation.org

संविधान और संवाद की संस्कृति

अमन मदान

मानव समाज में विविधता होना लाजिमी है। यह विविधता विचारों, सामाजिक-आर्थिक स्तर व और भी कई आयामों में हो सकती है। इन सभी विविधताओं के साथ ही हमें अपने संविधान के अनुसार ऐसा समाज बनाना है, जिसमें सभी इंसानों के लिए पारस्परिक इज़्ज़त हो।

यह लेख संविधान की अपेक्षाओं में शामिल लोकतंत्र, इंसानी व्यवहार, बन्धुत्व, दोस्ती, ताक़त, विरोध जैसे शब्दों को खँगालता है, और इन्हें व इनके अंतर्सम्बन्धों को समझने में मदद करता है। यह संवाद को लोकतंत्र के फलने-फूलने के लिए आवश्यक पहलू के रुप में रखता है, और संवाद की संस्कृति कैसे बनाई जाए, इसके कुछ तरीक़े प्रस्तुत करता है। -सं.

26 नवम्बर, 1949 को डॉ भीमराव रामजी अम्बेडकर के नेतृत्व में एक विशेष समिति द्वारा तैयार किए गए संविधान को भारत की संविधान सभा ने अपनाया था। इस सभा में की गईं चर्चाओं का निष्कर्ष था कि भारत में लोकतंत्र की प्रणाली को स्थापित किया जाए। लोकतंत्र ही क्यों, राजतंत्र और राजा-महाराजाओं की पुरानी व्यवस्था को फिर से क्यों नहीं? क्या किया जाना चाहिए और कैसे? इसपर हर समाज में लोगों की अलग-अलग राय होती है। लोकतंत्र में यह तय करने का ज़्यादा अच्छा तरीक़ा है कि मतभेद की स्थिति में क्या करना है। यह आमतौर पर सभी को सुनकर और सभी के विचारों पर विचार करके आगे बढ़ता है।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि हम यह तय करने की कोशिश कर रहे हैं कि शिक्षा के निजीकरण का समर्थन करना है, या सरकारी स्कूलों के विकास का। कुछ लोग कहते हैं कि केवल निजी स्कूल ही अच्छा काम करते हैं, लेकिन कुछ का मानना है कि सही सहयोग मिलने पर सरकारी स्कूल निजी स्कूलों से बेहतर हो सकते हैं। तब हमें क्या करना चाहिए?

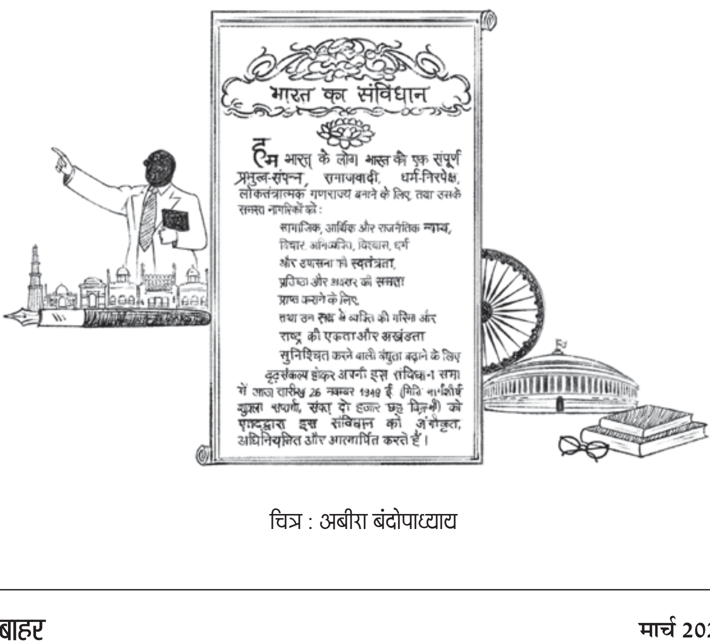
हमारे पास हमेशा अलग-अलग विचारों और विचारधाराओं वाले व अलग-अलग संसाधनों और शक्तियों वाले लोग होंगे। लोकतंत्र का उसूल यह है कि हम एक दूसरे की बात सुनें, और फिर तर्क व मूल्यों पर मन्थन करते हुए निर्णय लें कि क्या करना चाहिए। यह राजतंत्र से भिन्न है जहाँ राजा सिर्फ़ अपने समर्थकों की बात सुनता है, और फिर निर्णय लेता है कि उसे क्या करना है। लोकतंत्र में अपेक्षा की जाती है कि लोग सीधे ही आपस में बात करें या फिर उनके प्रतिनिधि एक दूसरे से बात करके निर्णय लें। यह तरीक़ा राजतंत्र व्यवस्था से बेहतर माना जाता है। किसी भी राजतंत्र में राजा मूलतः सबसे शक्तिशाली व्यक्ति या उसका पुत्र होता है। जो राजा बनता है, वह मूल्यों और तर्कों पर सोचने की क्षमता के आधार पर नहीं बनता। वह इसलिए बनता है क्योंकि वह या तो सबसे शक्तिशाली फ़ौज का जनरल है, या उस जनरल का चहीता पुत्र। उसका न्यायपूर्ण होना या साफ़ तरीक़े से सोच पाना कोई ज़रूरी नहीं है। निर्णय तो साफ़ और स्पष्ट सोच व नैतिक उसूलों पर होना चाहिए, और इसमें आपसी संवाद बेहद ज़रूरी होता है। इसकी ज़्यादा सम्भावना लोकतंत्र में होती है, न कि राजतंत्र में।

साफ़ सोच और आपस में तर्क के आधार पर चर्चा करना व निर्णय लेना सिर्फ़ जनप्रतिनिधियों का काम नहीं है। लोकतंत्र का आधार यह है कि लोग स्वयं सोचें, और सबसे सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए एक दूसरे के साथ चर्चा करें। अगर हम ख़ुद सोचना और आपस में चर्चा करना बन्द कर दें, तब हम वापस उस राजशाही में पहुँच जाएँगे जहाँ कोई और हमारे लिए फ़ैसले लेगा। और हम किसी और के सोचने की क्षमता पर मोहताज हो जाएँगे, जिसपर हमें शुरू से ही शक है।

विवादों में निर्णय कैसे लेना चाहिए ?

सारा राजनैतिक दर्शन और हर क़िस्म की सरकार इस सवाल पर टिकी है कि जब मतों में अन्तर होता है, तब निर्णय कैसे लें। जो लोग हमसे अलग सोचते हैं उनसे परस्पर व्यवहार करने के कई तरीक़े होते हैं। आमतौर पर इस्तेमाल किया जाने वाला तरीक़ा होता है, दूसरों के विचारों को स्वीकार किए बिना उन्हें वह करने के लिए मजबूर करना जो हम सोचते हैं कि सही है। उदाहरण के लिए, जो लोग निजी स्कूलों में विश्वास करते हैं, वे किसी और की बात सुनने से इंकार कर सकते हैं, और जो चाहते हैं वही करते रहते हैं। यदि कोई विरोध करता है, उसे जेल में डाल दिया जाता है, सरकार द्वारा पीटा जाता है, परेशान किया जाता है, इत्यादि। निजी स्कूली शिक्षा के विरोधी भी इसी तरह ज़बरदस्ती के तरीक़ों का इस्तेमाल कर सकते हैं। वे निजी स्कूलों की ओर जाने वाली सड़कों को अवरुद्ध कर सकते हैं, उन्हें काम करने से रोक सकते हैं, उनका समर्थन करने वालों के साथ दुर्व्यवहार कर सकते हैं, इत्यादि।

कुछ लोगों का मानना है कि केवल ज़बरदस्ती ही काम करती है। वे कहते हैं कि दूसरे लोग सुनते नहीं हैं, इसलिए सबसे अच्छा विकल्प यही है कि आप मज़बूत बनें, और जो सही है उसके साथ, बिना किसी और की परवाह किए, आगे बढ़ें। इसमें समस्या यह है कि हमें पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि हम सही हैं। यह आश्वस्त होने के लिए, कि हम सही हैं, हमें अपने तर्क और साक्ष्य पर ध्यान देना चाहिए कि उसमें किसी भी प्रकार की ख़ामी तो नहीं। लेकिन जो लोग केवल ज़बरदस्ती में विश्वास करते हैं, वे पहले से ही कह रहे हैं कि वे किसी ऐसे व्यक्ति से बात नहीं करेंगे या उसकी बात नहीं सुनेंगे, जो सोचता है कि वे ग़लत हैं। यानी, अगर कोई हमें हमारी ग़लती दिखाता है, हम उसकी बात ही नहीं सुनेंगे। हमारे आलोचक क्या कह रहे हैं, इसपर विचार करने से इंकार करके हम अपने सोचने के तरीक़ों में गम्भीर समस्याओं को आसानी से नज़रन्दाज़ कर सकते हैं। ज़बरदस्ती का रास्ता हमें सर्वोत्तम समाधान नहीं दे सकता।



चित्र : अबीरा बंदोपाध्याय



लोकतंत्र



राजतंत्र

चित्र : अबीरा बंदोपाध्याय

ज़बरदस्ती के तरीक़ों की एक और समस्या है। ज़बरदस्ती का तरीक़ा संख्या और शक्ति पर आधारित होता है। ज़बरदस्ती का रास्ता अपनाने वाले कहते हैं कि हम ताक़तवर हैं, इसलिए हम वही करेंगे जो हमें सही लगेगा। लेकिन सिर्फ़ इसलिए कि कोई व्यक्ति शक्तिशाली है, क्या यह आवश्यक है कि उसके पास वास्तव में सबसे अच्छा उत्तर भी हो कि वह वास्तव में सही है? यदि सरकार बहुत शक्तिशाली है और सभी निजी स्कूलों पर प्रतिबन्ध लगाने का निर्णय लेती है, तब सिर्फ़ इसलिए कि वह शक्तिशाली है, इसका मतलब यह नहीं है कि वह सही काम कर रही है। ऐसे ही, यदि कुछ लोगों के पास दूसरों की तुलना में अधिक पैसा है (अधिक पैसा होना एक प्रकार की शक्ति है), और वे महँगे निजी स्कूलों के लिए उच्च फ़ीस का भुगतान करने में सक्षम हैं, तब इसका मतलब यह क़तई नहीं है कि यह पूरे समाज के लिए सबसे अच्छी नीति है।

हम अपने आलोचकों से बहुत-सी बातें सीख सकते हैं। निजी बनाम सरकारी स्कूलों की बहस में यह सम्भव है कि कोई ऐसी बात बता दे, जिसके बारे में हमने पहले सोचा ही नहीं था। उदाहरण के लिए, कोई यह बता सकता है कि अधिकांश निजी स्कूल कम फ़ीस लेते हैं, और काफ़ी ख़राब तरीक़े से काम करते हैं। वास्तव में, जिस तरह की फ़ीस वे बच्चों के माता-पिता से प्राप्त कर सकते हैं, उसमें वे अच्छी तरह से प्रशिक्षित और जानकार शिक्षकों को नियुक्त नहीं कर सकते। वे कभी भी अच्छे से नहीं पढ़ा सकेंगे। अच्छे शिक्षक पाने और बनाए रखने के लिए बच्चों से प्रति माह लगभग 2000 रुपए फ़ीस लेनी पड़ेगी। लेकिन आधे से ज़्यादा भारतीय परिवार इतनी ज़्यादा फ़ीस नहीं दे सकते, तब क्या हम अब भी उस व्यापक तरीक़े से कह सकते हैं कि भारत में केवल निजी स्कूल होने चाहिए?

या किसी ऐसे व्यक्ति को लें जो सरकारी स्कूलों के ख़िलाफ़ बहस कर रहा है, और कहता है कि वहाँ तो शिक्षकों को ठीक से पढ़ाने का मौक़ा ही नहीं दिया जाता। सरकारी स्कूल के अधिकांश शिक्षकों को साल में कई बार सर्वेक्षण, चुनाव, आदि कराने के लिए सरकारें इधर-उधर भेज देती हैं। वे पाठ्यक्रम कैसे पूरा कर सकते हैं? क्या हम अब भी इतने सरल तरीक़े से कहेंगे कि भारत में केवल सरकारी स्कूल ही होने चाहिए?

ज़ाहिर है, सभी भारतीयों को अच्छी शिक्षा कैसे दी जाए, यह सवाल जटिल है, और इसे कई पहलुओं से देखें, तब ज़्यादा अच्छा होगा।

यह विचार, कि व्यक्ति को दूसरों पर वह थोप देना चाहिए जो वह ख़ुद चाहता है, बहुत आकर्षक है, लेकिन आमतौर पर यह एक अच्छा दृष्टिकोण नहीं है। जब तक कोई व्यक्ति जन्मजात जीनियस न हो (जोकि बड़ा दुर्लभ होता है), तब तक हमेशा दूसरों की बात सुनकर उसपर सोचना बेहतर होता है, ख़ासकर उनकी जो बहुत अलग तरीक़े से सोचते हैं। विभिन्न तर्कों को सुनने के बाद ही हम हर चीज़ को अधिक व्यापक और सम्पूर्ण तरीक़े से समझना शुरू कर सकते हैं।

सिर्फ़ दबाव के आधार पर निर्णय लेने में समस्या यह है कि जो किया जाएगा वह वही होगा, जो सबसे शक्तिशाली सोचता है कि किया जाना चाहिए। ज़रूरी नहीं कि यह सबसे अच्छा निर्णय हो। भारत के बच्चों के लिए क्या किया जाना चाहिए, इसका निर्णय केवल सत्ता द्वारा करने के बजाय, हमें वास्तव में नैतिक विचारों, तर्क और साक्ष्यों के आधार पर लेना चाहिए। यह लोकतंत्र का केन्द्रीय सिद्धान्त है कि लोग ध्यान से सोचें और एक दूसरे की बात सुनें, ताकि बेहतर निर्णय पर पहुँच सकें।

संवाद की संस्कृति

लोकतंत्र को फलने-फूलने के लिए वास्तव में संवाद की संस्कृति और लोगों के बीच कुछ ख़ास तरह के रिश्तों की ज़रूरत होती है। यदि ऐसी संस्कृति और रिश्ते मौजूद नहीं हैं, लोकतंत्र और राजतंत्र के बीच कोई अन्तर नहीं रह जाएगा। हमें एक ऐसी संस्कृति की आवश्यकता है जहाँ कोई दूसरों से बात कर सके, कुछ तर्क दे सके, दूसरे लोगों के तर्क सुने, फिर सोचे।

संवाद की संस्कृति कुछ ज्ञान, मूल्यों और प्रथाओं को समाज में व्यापक रूप से फैलाने की माँग करती है। जो लोग लोकतंत्र को बढ़ावा देना चाहते हैं, उनके लिए चुनौती है कि कैसे अधिक-से-अधिक लोगों—बच्चों, युवाओं और वयस्कों—में इस संस्कृति को फैलाएँ।

तर्क की संस्कृति

तर्क की संस्कृति का अर्थ है, लोग समझ सकें कि तार्किक रूप से क्या उचित है। और इस तरह की तार्किकता को वे रोज़ाना व्यवहार में प्रयोग करना जानें। विभिन्न प्रश्नों के बारे में स्पष्ट और गम्भीर रूप से सोचने में लोगों को सक्षम होना चाहिए। इसमें कई चीज़ें शामिल हैं। उदाहरण के लिए, यह जाँचना कि "यदि सरकारी स्कूलों की इमारत को हर साल रँगा जाए, तब उनमें बच्चे अच्छी पढ़ाई करेंगे" जैसे कथन क्या सही हैं। हम बिलकुल चाहेंगे कि सरकारी स्कूलों की दीवारें साफ़ और रंगीन हों, पर वास्तव में, इस वाक्य में तर्क सही नहीं है। हालाँकि ताज़ा रंग-रोगन वाली इमारतें अच्छी हैं, लेकिन अच्छी शिक्षा के लिए यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। अच्छी शिक्षा के लिए शिक्षकों को जानकार होना चाहिए, पढ़ाना आना चाहिए, उपस्थित रहना चाहिए और पढ़ाने के लिए इच्छुक होना चाहिए। रंग-रोगन वाली इमारत होने से इसमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। इसलिए यह सीखना महत्त्वपूर्ण है कि हमें हमेशा किसी तर्क के आधारों की जाँच करनी चाहिए, और देखना चाहिए कि क्या वे वास्तव में निष्कर्षों से मेल खाते हैं। इस कौशल को सीखना स्पष्ट या आलोचनात्मक सोच सीखने का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। हमारे निर्णयों में सुधार और बातचीत के लिए स्पष्ट रूप से सोचने में सक्षम होना आवश्यक है। स्पष्ट सोच के बुनियादी ज्ञान और कौशल को बढ़ावा देने के लिए ग़ैर-सरकारी संगठन और स्कूल बहुत कुछ कर सकते हैं। इस बारे में इंटरनेट पर कई सामग्रियाँ उपलब्ध हैं कि यह कैसे किया जा सकता है।

सुनना सीखना

हमें कुछ ऐसी अवधारणाओं, सामाजिक कौशलों और दृष्टिकोणों की भी आवश्यकता है जो बातचीत करने की क्षमता को बढ़ावा देते हैं। अकसर लोग एक दूसरे से बात तो करते हैं, लेकिन वास्तव में बातचीत या संवाद नहीं करते। यहाँ एक उदाहरण है :

व्यक्ति 1 : "सरकारी स्कूल हमारे देश के लिए सर्वोत्तम हैं।"

व्यक्ति 2 : "नहीं, नहीं, वे बेकार हैं।"

व्यक्ति 1 : "नहीं, वे बेकार नहीं हैं। उलटा, निजी स्कूल धोखाधड़ी करते हैं और लोगों को लूटते हैं।"

व्यक्ति 2 : "बिलकुल नहीं। वे सरकारी स्कूलों से कहीं बेहतर हैं।"

ये दोनों एक दूसरे से कुछ कहते हुए नज़र आते हैं, लेकिन हम ये नहीं कह सकते कि ये व्यक्ति आपस में बातचीत कर रहे हैं। वास्तव में,

वे इस बारे में नहीं सोच रहे हैं कि दूसरा क्या कह रहा है। वे केवल प्रतिक्रिया दे रहे हैं, और बस यह कह रहे हैं कि दूसरा व्यक्ति ग़लत है।

संवाद की संस्कृति हमें एक दूसरे की बात ध्यान से सुनने जैसी क्षमताओं को बढ़ावा देने के लिए कहती है। उदाहरण के लिए, हम बच्चों और युवाओं के साथ कुछ गतिविधियाँ कर सकते हैं। इनमें हम एक व्यक्ति को किसी विषय पर बोलने के लिए और दूसरों को यह पहचानने को कह सकते हैं कि उनके मुख्य बिन्दु, उनकी भावनाएँ और बुनियादी मूल्य क्या हैं। इस तरह के अभ्यास से बच्चों को अपनी प्रतिक्रिया पर नियंत्रण रखने और यह पहचानने में मदद मिलती है कि दूसरा व्यक्ति जो कह रहा है, उसमें कुछ महत्त्वपूर्ण है या नहीं।

ऐसे बोलना सीखना जिससे दूसरा पक्ष रक्षात्मक न हो

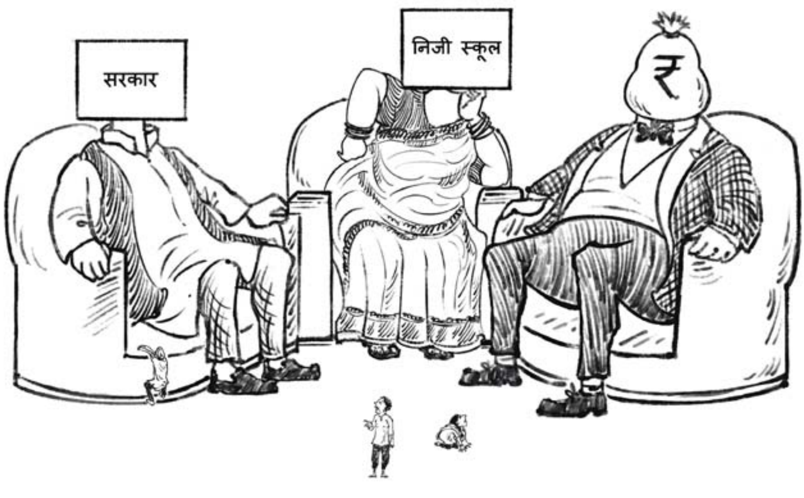
सुनने का तरीक़ों को जानने के अलावा, हमें बोलने के कुछ तरीक़े भी विकसित करने होंगे। हममें से कई लोगों ने ऐसी स्थितियों का अनुभव किया है जहाँ भले ही हम अच्छे तर्क दे रहे हों, हमारे श्रोता रक्षात्मक हो जाते हैं, और हम जो कह रहे हैं उसे स्वीकार करने से इंकार कर देते हैं। जब मेरा श्रोता सिर्फ़ मेरी बातों को हवा में उड़ाने पर ध्यान दे रहा है, और वास्तव में, मेरे शब्दों पर गम्भीरता से विचार नहीं करता है, तब हमारे लिए संवाद करना मुश्किल हो जाता है। ऐसा कई बार मेरे बात करने के तरीक़े के कारण ही हो जाता है। यह उदाहरण लें :

व्यक्ति 1 : "तुम अमीर लोग सरकारी स्कूलों का महत्त्व नहीं समझ सकते।"

व्यक्ति 2 : "क्या मतलब अमीर लोग... तुम जैसों की तो विचारधारा ही अन्धी है, और पहले ही फ़ेल हो चुकी है। तुम लोग तो देश की हालत ख़राब करने में लगे हुए हो।"

व्यक्ति 1 : "नहीं, तुम जैसे लोग ही इस देश को बर्बाद कर रहे हैं।"...

जब हम इस तरह से बात करते हैं जो दूसरे लोगों या उनके दोस्तों पर हमला करने और उन्हें अपमानित करने जैसा लगता है, तब उनकी सामान्य प्रतिक्रिया ख़ुद को या अपने दोस्तों को बचाने की हो जाती है। वे हमारी मुख्य दलीलें सुनना बन्द कर देते हैं। जब तक कोई बहुत सुलझे हुए व्यक्ति से बात नहीं कर रहे हों, यह बेहतर होता है कि हम ऐसी बातें न करें जो किसी का अपमान करें या जिनसे उन्हें ठेस पहुँचे।



चित्र : अबीरा बंदोपाध्याय

हम बच्चों और युवाओं को धमकी-भरी, अपमानजनक भाषा के उदाहरण देकर किसी और तरह की भाषा प्रयोग करने का अभ्यास करा सकते हैं, जिससे दूसरा व्यक्ति रक्षात्मक न हो। मसलन, ऊपर वाली बात को इस प्रकार रखा जा सकता है :

व्यक्ति 1 : "हम हमेशा चीज़ों को अपने अनुभव के अनुसार देखते हैं। चीज़ों को किसी अन्य दृष्टिकोण से भी देखने में मदद मिल सकती है।"

व्यक्ति 2 : "हाँ, लेकिन इससे तुम्हारा क्या मतलब है? किस तरह से?"

व्यक्ति 3 : "उदाहरण के लिए, आइए, यह देखने का प्रयास करें कि बहुत कम आय वाला व्यक्ति स्कूलों को कैसे देख सकता है।"...

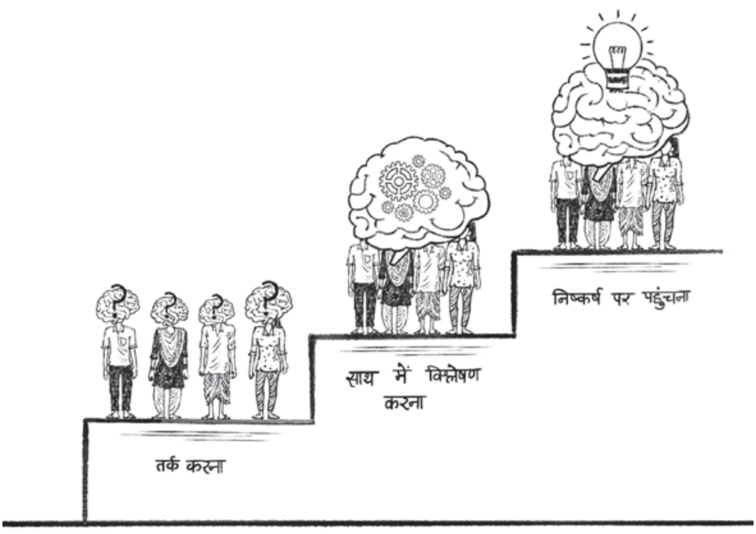
हम अकसर किसी ऐसे व्यक्ति के साथ बातचीत में फँस जाते हैं जो नहीं जानता कि दूसरों की बात ध्यान से कैसे सुनी जाए। लेकिन अपनी ओर से हम फिर भी कुछ प्रयास कर सकते हैं कि बात आगे बढ़े। इसके लिए अगर हम ध्यान रखें कि हमारी बातों में उन्हें किसी क़िस्म का अपमान या धमकी न दिखे, हमारा काम थोड़ा आसान हो जाता है। इससे उन्हें, अभी भी हम जो कह रहे हैं, उसे गम्भीरता से सुनने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

शक्ति और संवाद

लोगों के बीच शक्ति का सन्तुलन इस बात को प्रभावित कर सकता है कि वे एक दूसरे से कैसे बात करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि माता-पिता और निजी स्कूलों के प्रबन्धकों की ओर से सरकार पर किसी क़िस्म का दबाव नहीं डाला जा सकता, तब सरकार का प्रशासन उनके विचारों को नज़रन्दाज़ कर सकता है। या, विपरीत स्थिति पर विचार करें जहाँ निजी स्कूल एक बहुत शक्तिशाली लॉबी हैं, जबकि सरकारी स्कूलों के बच्चों के माता-पिता के पास कोई राजनीतिक प्रभाव नहीं है। ऐसे में, सरकारी स्कूलों के समर्थकों की बातों को नज़रन्दाज़ करने का प्रलोभन होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि कहने वाले कितनी शक्तिशाली स्थिति में हैं, और उनके पास कितनी ताक़त है, वह इस बात को प्रभावित करता है कि हम उनकी बात को कितने ध्यान से सुनते हैं और कितनी गम्भीरता से लेते हैं। अगर दो लोग समान रूप से शक्तिशाली हों, तब उनमें से कोई भी एक दूसरे पर ज़बरदस्ती अपनी बात को मनवाने का दबाव नहीं डाल सकता। ऐसी परिस्थिति में ज़्यादा मुमकिन है कि दोनों लोग एक दूसरे की बात सुनने और समझने की तरफ़ बढ़ेंगे।

इसलिए अच्छा है कि अगर हम बातचीत करना चाहते हैं, तब भी अपनी ताक़त बनाए रखने की कोशिश करें। लेकिन हम सिर्फ़ ताक़त के आधार पर मामले तय नहीं करते। हम मनुष्य इस या उस पक्ष का साथ देने में नैतिक तर्कों



चित्र : अबीरा बंदोपाध्याय

और साक्ष्यों पर भी ध्यान देते हैं। यह बहुत आसान हो जाता है जब हमारे समाज में बड़े पैमाने पर संवाद की संस्कृति हो। जब शक्तिशाली लोग भी संवाद की संस्कृति को साझा करते हैं, हम पाते हैं कि वे तर्क सुनने के लिए बहुत आसानी से झुक जाते हैं, और सिर्फ़ वही नहीं करते हैं जो सबसे सुविधाजनक हो।

हमें अपना संविधान तो बहुत पहले मिल गया था। आज हमें उन संस्कृतियों के निर्माण पर काम करने की ज़रूरत है जोकि उसकी नींव को ज़्यादा मज़बूत कर सकें।

इसलिए संवाद की संस्कृतियों को मज़बूत करना आवश्यक है। शक्ति दूसरों को आपकी बात सुनने में मदद करती है। इसी प्रकार, एक दूसरे को सुनने और समझने के मूल्य व कौशल भी आपकी सुनवाई में मदद करते हैं, और अन्ततः, वे यह तय करने का सबसे अच्छा तरीक़ा हैं कि नैतिक रूप से क्या सही है। बेशक, वे सबसे अच्छा तब काम करते हैं, जब दोनों पक्षों में बातचीत की संस्कृति होती है। अकसर लोग कहते हैं कि दूसरा समूह संवाद में विश्वास नहीं करता, तब हम इसे व्यवहार में लाने का प्रयास क्यों करें। लेकिन तार्किक होना या दूसरों की बात सुनने से इंकार करना व्यवहारिक दृष्टिकोण नहीं है। यदि हम संवाद का प्रयोग नहीं करेंगे, दूसरा भी उससे मना कर देगा, और हम सदैव इसी चक्र में फँसे रहेंगे। किसी को तो संवाद की संस्कृति का निर्माण शुरू करना ही होगा, और क्यों न हम ही उसे बनाएँ, चाहे छोटे-से तरीक़े से ही।

लोकतंत्र में संवाद के स्थान के साथ-साथ और भी बहुत कुछ है, मगर मुझे अब यहाँ रुक जाना चाहिए। अन्त में, आइए, हम फिर से याद करें कि बाबा साहेब अम्बेडकर ने संविधान के बारे में क्या कहा था। उन्होंने कहा था कि लोकतंत्र केवल क़ानून बनाने या उन्हें काग़ज़ पर लिखने से जीवित नहीं रह सकता। डॉ अम्बेडकर ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि लोकतंत्र को फलने-फूलने के लिए हमें समाज में कुछ संस्कृतियों का प्रसार करना होगा। इनके मूल में, अन्य बातों के अलावा, बन्धुत्व या मैत्री थी। गौतम बुद्ध ने मैत्री का वर्णन एक कहानी के माध्यम से किया है जिसमें सड़क पर चलने वाले एक भिक्षु को दूसरों से गालियों का सामना करना पड़ सकता है, लेकिन फिर भी वह सभी के लिए प्यार और करुणा रखता है। मतों में अन्तर होने के बावजूद, सभी के प्रति करुणा और परोपकार की भावना ही समाज को एक साथ बाँधे रखती थी। उन्होंने कहा कि बन्धुत्व के बिना इस देश में न तो स्वतंत्रता पनपेगी न ही समानता। जब हम सभी के लिए सम्मान की संस्कृति बनाते हैं, यहाँ तक कि उन लोगों के लिए भी जो हमसे असहमत हैं, और जब हम आपसी स्नेह की भावना से बातचीत करने में सक्षम होते हैं, तब ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसे हम भारतीय मिलकर दूर नहीं कर पाएँगे।

हमें अपना संविधान तो बहुत पहले मिल गया था। आज हमें उन संस्कृतियों के निर्माण पर काम करने की ज़रूरत है जोकि उसकी नींव को ज़्यादा मज़बूत कर सकें।

अमन मदान ने मानवशास्त्र और समाज शास्त्र का अध्ययन किया है। पिछले तीन दशकों से शिक्षा और समाज के मुद्दों पर अध्यापन एवं शोध के क्षेत्र में संलग्न हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : amman.madan@apu.edu.in

पुस्तकालय : नज़रिया और कौशल दोनों ही अहम हैं
समुचित प्रशिक्षण ही एकमात्र रास्ता

अनिल सिंह

नीति दस्तावेज़ों में स्कूल के दायरों में पुस्तकालय की अहमियत को स्वीकारते हुए कई महत्त्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। फिर भी कई कोशिशों के बावजूद पुस्तकालयों की स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। लेख स्कूल में पुस्तकालय के महत्त्व और आवश्यकता को दर्शाता है, और कहता है कि किसी भी पुस्तकालय के बेहतर संचालन के लिए अच्छी किताबों का संकलन तो होना ही चाहिए, साथ ही पुस्तकालय को जीवन्त व सक्रिय बनाने और बच्चों को किताबों से जोड़ने के लिए पुस्तकालय प्रभारियों को पुस्तकालय के विभिन्न अवयवों के बारे में प्रशिक्षित करना भी ज़रूरी है। पुस्तकालय प्रभारियों के लिए बनाए गए एक ऐसे ही प्रशिक्षण कोर्स व उसके क्रियान्वयन का विवरण यहाँ प्रस्तुत है। बच्चों के साथ किताब पर काम कैसे करें, इसकी एक बानगी भी आप लेख में पाएँगे। –सं.

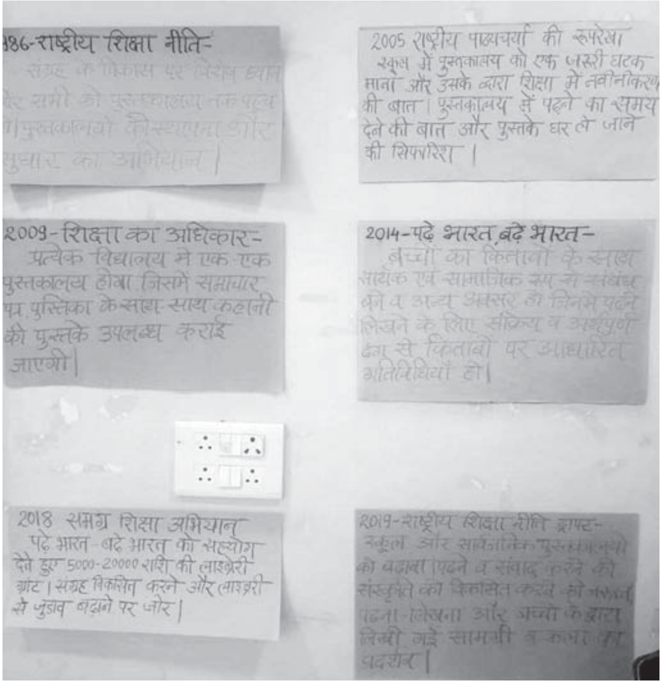
पृष्ठभूमि

स्कूल पुस्तकालय की बात मुदलियार आयोग 1952 की रिपोर्ट में की गई सिफ़ारिशों से लेकर *नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* में किए गए प्रावधानों तक कही जा रही है। *1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति* पुस्तकालय के संग्रह के विकास और पुस्तकालय तक सभी की पहुँच की बात करती है। वहीं 1996 की आचार्य राममूर्ति कमेटी की सिफ़ारिशों के अनुसार पाठ्यपुस्तकों पर निर्भरता कम करते हुए पुस्तकालय द्वारा शिक्षा में गुणवत्ता बढ़ाने की बात देखने को मिलती है। *2005 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा* पुस्तकालय को स्कूल का एक घटक मानते हुए नवीनीकरण की बात कहती है, और पुस्तकालय कालांश के लिए समय निकालने और पुस्तकें घर ले जाने की महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिश करती है। *2009 का शिक्षा का अधिकार क़ानून* पुस्तकालय में समाचार पत्र-पत्रिकाओं सहित विविध पुस्तकों व कथा साहित्य को प्रोत्साहित करने की बात करता है। 2018 में समग्र शिक्षा अभियान में पुस्तकालय में संग्रह विकसित करने के लिए 5000 से 20000 रुपए तक की राशि का प्रावधान किया गया। अब *2020 की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति* बच्चों में पढ़ने व संवाद की संस्कृति को बढ़ावा देने की बात करती है। इसमें पुस्तकालयों के भीतर क्षेत्रीय भाषाओं के बाल साहित्य की ज़रूरत पर ज़ोर दिया गया है। पुस्तकालय में पुस्तकों के इर्द गिर्द गतिविधियों की बात भी पहली बार इसी में कही गई है।

पुस्तकालयों का मौजूदा हाल

शिक्षा के व्यापक दायरे में पुस्तकालय की ज़रूरत और उसके महत्त्व को नज़रन्दाज़ नहीं किया जा सका है। लेकिन प्रश्न फिर भी वही है कि स्कूल समय सारणी में पुस्तकालय कालांश का प्रावधान, पुस्तक संग्रह के लिए धनराशि और पुस्तकालय प्रभारी की पदस्थापना के बावजूद हम पहुँचे कहाँ हैं?

पुस्तकालय कालांश का प्रावधान हो जाने के बाद भी कई बार शाला प्रधान का कहना



होता है कि जब कक्षाओं में विषय शिक्षण के साथ ही यह सब हो रहा है, फिर अलग से पुस्तकालय कालांश की ज़रूरत ही क्या है। या, ज़्यादातर कक्षा 1 और 2 के बच्चों के लिए इसे यह सोचकर उपयुक्त नहीं माना जाता है कि जब इन्हें पढ़ना-लिखना अभी आया ही नहीं है, फिर इन बच्चों के लिए पुस्तकालय में क्या होगा। विषय शिक्षण और बुनियादी पढ़ना-लिखना सिखाने पर पूरा ज़ोर होने के कारण पुस्तकालय कालांश को समय की बर्बादी समझा जाता है। पुस्तकालय प्रभारी होने के बावजूद भी पुस्तकालय की गतिविधियाँ नहीं हो पातीं, क्योंकि नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकों के रख-रखाव, उनके वितरण, आदि में ही उसकी व्यस्तता रहती है। एक तरह से नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकों से जुड़े काम करना ही पुस्तकालय प्रभारी का काम मान लिया गया है। समग्र शिक्षा अभियान या अन्य कार्यक्रमों के तहत आई पुस्तकें अलमारी में ही रखी रह जाती हैं, क्योंकि इनके इस्तेमाल को लेकर न तो कोई प्रशिक्षण है, न ही स्पष्ट दिशा-निर्देश। पुस्तकों की ख़रीद के लिए अगर राशि होती भी है, तब कहाँ से अच्छी पुस्तकें मिलेंगी, कौन चयन करेगा, आदि पर कोई स्पष्ट जानकारी नहीं होने से भी इसका समुचित इस्तेमाल नहीं हो पाता।

इसके अलावा, आज भी स्कूलों में पाठ्यपुस्तकों से इतर किताबों को लेकर खुलापन और स्वीकार्यता नहीं है। पुस्तकालय सभी के लिए पहुँच में नहीं हैं। पुस्तकालयों को उच्च कक्षाओं के लिए सन्दर्भ कोश की तरह देखने का साधनवादी नज़रिया बना हुआ है। प्राथमिक स्तर के बच्चों, जिनके लिए पुस्तकालय सबसे ज़रूरी और अहम है, को पुस्तकालय से दूर रखा जाता है। संग्रह न तो अद्यतन है, न उसमें विविधता और ताज़गी है। पुस्तकालय प्रभारी का कोई समुचित प्रशिक्षण नहीं है कि पुस्तकालय का सार्थक और जीवन्त इस्तेमाल कर सकने का उसमें नज़रिया और कौशल विकसित हो सके। ऐसे में, पुस्तकालय अपना अर्थ और वजूद ही खो देते हैं। शिक्षाविद् प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार के शब्दों में कहें तो, पुस्तकालयों का यह हाल देखकर लगता है समाज को इसकी ज़रूरत ही नहीं है।

पुस्तकालयों की सम्भावनाएँ

प्राचीन काल से पुस्तकालय हमारी संस्कृति का हिस्सा रहे हैं। समाज से ही वो स्कूल में आए हैं। पुस्तकों में कई-कई जीवन को समझने की खिड़की खुलती है। पुस्तकालय का बेहतर इस्तेमाल दरअसल पुस्तकों के पढ़े-पढ़ाए जाने और उनपर रचनात्मक संवाद के ज़रिए ही हो सकता है।

पुस्तकों पर रचनात्मक संवाद दरअसल कहानी या कविताओं की परतों को खोलता है। इस तरह के संवादों के दौरान बच्चे अपनी कल्पनाओं, अनुमान, जीवन अनुभव और तर्क-विश्लेषण जैसे कौशलों का इस्तेमाल कर पाने

का मौक़ा पाते हैं। बच्चों को इस संवाद से जो रस मिलता है वह उन्हें साहित्य का आस्वादन करना सिखाता है, और इस तरह वे पाठक बनने की दिशा में आगे बढ़ते हैं।

पुस्तकालय में पुस्तक चर्चा, रीड अलाउड, साझा पठन, जोड़ी पठन, पाठक रंगमंच, रोल प्ले, कहानी पर प्रश्न और चर्चा, संग्रह पर आधारित क्विज़ और पहेलियाँ, पुस्तक ख़ज़ाने की खोज, डिस्प्ले, किताबों से जुड़े चित्रांकन और लेखन की ऐसी अनेक गतिविधियाँ हैं जो दरअसल पुस्तकालय को जीवन्त बनाती हैं। शिक्षा के ज़रिए जिन व्यापक लक्ष्यों को हासिल करने की बात हम लगातार करते हैं उन तक पहुँचना भी पुस्तकालय के ज़रिए सुगम हो सकता है।

अलग-अलग गतिविधियों के लिए उपयुक्त किताबों का चयन, उनको ख़ुद पढ़कर देखना-समझना, बच्चों के साथ संवाद, चर्चा के लिए उपयुक्त सवालों की बुनावट, जुड़ाव के लिए प्रारम्भिक चर्चा या गतिविधि डिज़ाइन करना, किताब के इस्तेमाल किए जाने की चरणबद्ध योजना, पूर्व तैयारी और सावधानियाँ, बच्चों के साथ किए गए अपने काम पर चिन्तन और स्वयं की दक्षता बढ़ाने के प्रयास, कुछ ऐसे कौशल और हुनर हैं जो विधिवत प्रशिक्षण से ही आ सकते हैं। किन्तु ग़ौरतलब है कि हमारे देश में इतने महत्त्वपूर्ण काम के लिए कोई समुचित प्रशिक्षण योजना या कार्यक्रम नहीं है। बाल साहित्य और बाल पुस्तकालय को लेकर चलने वाले सावधिक प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम या ट्रेनिंग मॉड्यूल न के बराबर या बहुत कम हैं। इससे भी आगे इसे भाषा शिक्षण के दायरे में ही देखने का सीमित दृष्टिकोण भी पुस्तकालय की असीम सम्भावनाओं को रोकता है।

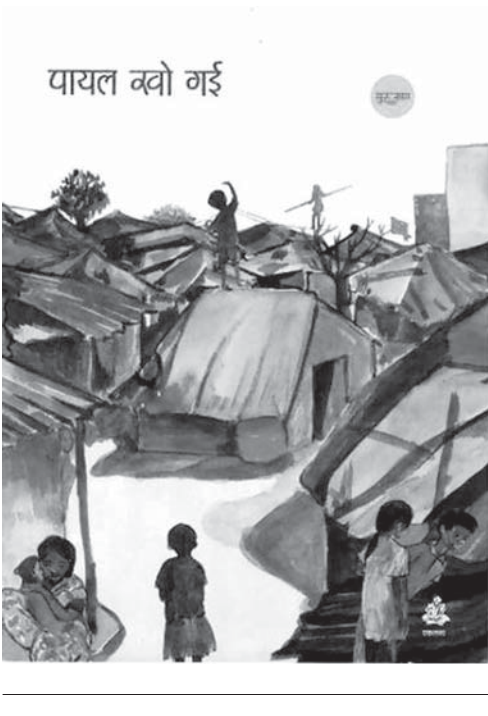
लाइब्रेरी एजुकेटर्स का प्रशिक्षण

पुस्तकालय की सम्भावनाओं को उनके अधिकतम स्तर पर ले जाने, और किताबों का समुचित व सार्थक इस्तेमाल कर पाने के लिए एक नज़र और हुनर दोनों अहम हैं। ऐसे में टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव द्वारा चलाया जा रहा लाइब्रेरी एजुकेटर्स कोर्स (LEC) पुस्तकालय के सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों ही पहलुओं पर बराबर नज़रिया व समझ बनाने की कोशिश करता है। इसमें देशभर से हर साल अधिकतम 35 लोगों का नामांकन लिया जाता है। सात महीने का यह कोर्स 13 (5+5+3) दिन की सम्पर्क अवधि एवं शेष अन्तराल अवधि के मिश्रित ढाँचे में चलाया जाता है। कोर्स में पुस्तकालय की ज़रूरत और महत्त्व, पढ़ने की प्रक्रिया, बाल साहित्य, पुस्तकालय गतिविधियाँ, पुस्तकालय संचालन एवं आकलन आदि पर सत्र, परिचर्चाएँ, पठन सामग्री, अभ्यास, प्रोजेक्ट कार्य, पुस्तकालय भ्रमण एवं अवलोकन के माध्यम से समझ एवं दक्षता बनाने के प्रयास किए जाते हैं। प्रतिभागी ख़ुद भी नियमित पठन से जुड़ते हैं, और तब बच्चों को किताबों से जोड़ने का एक पूरा ख़ाका भी वे विकसित कर पाते हैं।



इस तरह के प्रशिक्षण क्यों ज़रूरी हैं? इस बात को हम एक उदाहरण से समझने की कोशिश कर सकते हैं। एक पुस्तक हम चुनते हैं– *पायल खो गई।* एकलव्य और मुस्कान के संयुक्त प्रकाशन से आई यह किताब शहरी वंचित परिवारों के जीवन सन्दर्भों एवं उनमें बच्चों की स्थिति की एक झलक देती है। अव्वल तो, किसी को भी इस किताब को कई दफ़े पढ़ने की ज़रूरत है, ताकि वह टेक्स्ट और चित्रों की बारीक़ियों को, कथानक को समझ सके, और एक पाठक के रूप में उसका आस्वादन कर सके।

हम इस वास्तविकता से भली भाँति वाक़िफ़ हैं कि वयस्कों, शिक्षकों में पढ़ने, और वह भी बाल साहित्य, की प्रवृत्ति तो बिलकुल ही नहीं है। अगर एक बार यह आदत बन जाए, और साहित्य का चस्का लग जाए, फिर पुस्तकालय के जीवन्त होने की पहली सीढ़ी तो पार हुई समझिए। शिक्षक को लगा यह चस्का बच्चों में ट्रांसमिट होने में ज़्यादा वक़्त नहीं लेगा।



पायल खो गई के ज़रिए एक अनुभव

पायल खो गई पर काम शुरू होने से पहले उस किताब का परिचय देते हुए प्रतिभागियों के साथ शीर्षक पर थोड़ी बात की गई। यह शीर्षक कई तरह की सम्भावनाएँ समेटे हुए है। प्रतिभागी अनुमान लगाने लगे कि शीर्षक क्या कहता है, कहानी क्या हो सकती है, आदि। कवर पेज पर बने चित्र का अवलोकन कराया गया। उसकी बारीक़ियों पर नज़र डालते हुए प्रतिभागियों ने उससे कुछ अनुमान और निष्कर्ष निकाले।

प्रतिभागियों ने कहा कि कहानी में किसी की पायल खो गई होगी। कुछ ने कहा कि अब पायल पहनने का रिवाज ख़त्म-सा हो गया है, इसलिए पायल के खो जाने की बात कही गई होगी। कुछ ने पायल को नाम की तरह लिया, और कहा कि पायल नाम की कोई लड़की गुम हो गई होगी।

यह सब बच्चों को रचनात्मक बनाने, संवाद करने, और अपनी राय रख पाने का रास्ता बनाते हैं। पायल वस्तु भी है और एक नाम भी। इसके इर्द गिर्द कुछ चर्चाएँ हो सकती हैं। ये कहानी के प्रति उत्सुकता ही बढ़ाएँगी, और किताब से जुड़ाव बनाने में मददगार होंगी।

इसके बाद कहानी पढ़ना शुरू हुआ। कहानी में वाचन की शुद्धता, उतार-चढ़ाव, भावोत्पादकता, भाषा की बुनावट, विराम चिह्नों का अनुशासन बेहद महत्त्वपूर्ण है। यह बच्चों के लिए लिखित भाषा का संसार खोलता है, और भाषा को एक सन्दर्भ में वापरने की दृष्टि देता है।

इसी दौरान, किताब में कुछ पहले से चिह्नित जगहों पर रुक कर शिक्षक द्वारा बच्चों से छोटे-छोटे उत्प्रेरक सवाल किए जा सकते हैं। ये सवाल बच्चों को कहानी से जोड़ने, तत्परता दिखाने, और कहानी के साथ होने का अवसर देते हैं। छूट रहे बच्चों को भी इस ज़रिए वापस कहानी से जोड़ा जा सकता है। बच्चों में कहानी

के साथ-साथ चल सकने का कौतुक पनपता है। बीच में या बाद में पूछे जाने वाले सवालों की बुनावट क्या हो, यह पहले से तय होना बहुत ज़रूरी है।



प्रतिभागियों से पूछा गया, बच्चे क्या-क्या काम कर रहे हैं; कहाँ देखा है ऐसा दृश्य? इस तरह कुछ चित्रों पर रुक कर उनकी डिटेलिंग पर बच्चों की नज़र लाई जा सकती है। यह बच्चों में चित्रों को देखने की एक दृष्टि विकसित कर सकती है। कहानी में आए प्रसंगों या घटनाक्रम के आधार पर बच्चों को अपने अनुभव जोड़ने के मौक़े दिए जा सकते हैं। *पायल खो गई* में शहरी वंचित समुदाय के कामकाजी बच्चों के एक दिन का ब्योरा है, इसपर कक्षा में चर्चा की जा सकती है। इस सन्दर्भ में बच्चों से उनके अनुभव आमंत्रित किए जा सकते हैं।

प्रतिभागियों से कामकाजी बच्चों के शिक्षा के अधिकार पर बात की गई। बेहद मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ ही आईं। एक समूह इस समुदाय पर ही आरोप मढ़ रहा था कि वो अपने बच्चों को पढ़ाना नहीं चाहता। वहीं, दूसरे समूह का कहना था कि इन बच्चों के लिए परिस्थितियाँ बेहद प्रतिकूल हैं, ऐसे में कुछ अतिरिक्त प्रयास करके ही इन्हें शिक्षा से जोड़े रखा जा सकता है। काम करना भी बहुत कुछ सिखाता है, ऐसे में इन बच्चों में जीवन कौशल और व्यवहारिक समझ बेहतर होती है। इससे प्रतिभागियों को कहानी और उसके पात्रों से सार्थक रूप से जुड़ने का मौक़ा मिला।

कहानी के बाद कहानी पर बच्चों की प्रतिक्रिया लेना उन्हें कहानी को संश्लेषित करने, अनुभवों से जोड़ने, पाठक प्रतिक्रिया देने और कथानक के सन्दर्भों को समझने में मदद करता है। अब यह सिर्फ़ कहानी न होकर एक वास्तविक जीवन सन्दर्भ बन जाता है, और बच्चे गम्भीर प्रतिक्रियाएँ, मिलते-जुलते उदाहरण देते हैं, अपने अनुभव सुनाते हैं, राय रखते हैं, सवाल करते हैं, और स्थितियों का विश्लेषण कर उनपर चिन्तन भी करते हैं।

कहानियों में पात्रों के साथ होना, उनसे जुड़ाव और तादात्म्य बनाना एक अच्छा पाठक बनने की दिशा में पहला क़दम है। एक प्रशिक्षित पुस्तकालय प्रभारी या शिक्षक यह सब कर पाने में सक्षम होता है। पायल खो गई कहानी में जो बचपन है, वह बचपन की रूढ़ छवियों को तोड़ता है, बच्चों में श्रम के प्रति सम्मान और कामकाजी बच्चों के प्रति सहज संवेदनशीलता जगाता है। यह शिक्षक का दायित्व है कि वह बच्चों को कहानी को अपनी तरह से देखने-समझने, स्वीकारने या नकारने, निष्कर्ष निकालने और राय बनाने की छूट दें। कोई शिक्षा, सीख, सबक या निष्कर्ष देने की जल्दबाज़ी न करें। यह नज़रिया बनना बहुत ज़रूरी है कि बच्चे इसी तरह एक अच्छे पाठक, चिन्तक, स्वतंत्र राय रखने और सोचने-समझने वाले व्यक्ति बनेंगे।

हमने प्रतिभागियों से कहा कि वो बाहर जाकर 10-10 चीज़ें उठाकर लाएँ। इस तरह वहाँ लगभग 50-60 तरह की चीज़ें इकट्ठी हो गईं। हमने कहा, अब इन चीज़ों को सामग्री, उपयोगिता व मूल्य के हिसाब से वर्गीकृत करें। प्रतिभागियों ने इसमें बहुत मज़े किए। दरअसल इस गतिविधि के पीछे इस बात का अनुभव



कराने का उद्‌देश्य था कि कचरा बीनने वाले बच्चों में यह ग़ज़ब का कौशल होता है। आर्थिक के साथ ही इसका एक वैज्ञानिक पक्ष भी है। विभिन्न धातुएँ, रिसाइकिल्ड और फ़र्स्ट क्वालिटी प्लास्टिक में फ़र्क़ करने के साथ सामान्य काग़ज़ और गत्ते को अलग-अलग रखना, उनके बाज़ार मूल्य का आकलन करना, इलेक्ट्रॉनिक सामान में से बहुमूल्य हिस्सा व धातुओं को पहचानना और उन्हें चुनकर निकालना कोई साधारण बात नहीं। प्रतिभागियों से इन मसलों पर भी चर्चा हुई।

अगर यह सब हुआ हो तो कहानी के बाद कहानी पर चर्चा के कई रास्ते खुलते हैं। कहानी के बाद उसपर कोई लेखन या चित्रांकन भी हो सकता है। बच्चों को इसकी छूट होनी चाहिए कि वो कहानी पर अपनी किस तरह की प्रतिक्रिया देना चाहते हैं, और किस माध्यम से।

पुस्तकालय कमाल की जगह है

किताबों से जुड़ाव बनाने के लिए पुस्तकालय कक्ष में कोई जादू करने की ज़रूरत नहीं पड़ती है। किताबों में ही कितना जादू भरा पड़ा है, बस उसे ही बाहर निकालना है। जैसा कि मैंने ऊपर सुझाया है, यह जादू बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करने में कुछ गतिविधियाँ मददगार होती हैं। साथ ही, थीम- या विषय-आधारित पुस्तकों का डिस्प्ले लगाया जा सकता है। त्योहार व खान-पान की विविधता, मौसम, पक्षी, परिवार, महिला नायक, यात्रा कथाएँ, कविताएँ या विज्ञान पर कथेतर विधा में से कुछ थीम हो सकती हैं डिस्प्ले की, जो पढ़ने के लिए बच्चों को आमंत्रित करती हैं। इन्हें आकर्षक बनाने के लिए उपलब्ध संसाधनों से सजावट, विषय के इर्द गिर्द कुछ वास्तविक वस्तुएँ, निर्देश, चित्र पोस्टर, आदि लगाए जा सकते हैं।

यह सब क्यों ज़रूरी है; जीवन्तता क्या है; बच्चों को किताबों से जोड़ने, उन्हें पाठक बनाने को उत्प्रेरित करने के लिए क्या किया जाए; कैसे किया जाए; शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों को हासिल करने में पुस्तकालय किस तरह सहायक है; और कैसे यह स्कूल का अभिन्न हिस्सा है? यह दृष्टिकोण समुचित प्रशिक्षण से ही आ सकता है। अच्छे पुस्तकालय प्रभारी की तो बात होती है, लेकिन उनकी तैयारी की नहीं। सरकारी, ग़ैर-सरकारी शिक्षक या पुस्तकालय प्रभारी, शिक्षकीय पेशे को अपना कैरियर देखने वाले युवक-युवतियाँ, पुस्तकालय को बाल विकास के लिए उपयोग में लेने वाले सामाजिक कार्यकर्ता, सामुदायिक पुस्तकालय पहल चलाने वाले, आदि सभी व्यक्तियों के लिए यह तैयारी बेहद अहम है। पुस्तकालय के ज़रिए पढ़ने की संस्कृति बनाने के लिए ख़ुद का एक सचेत पाठक होना बहुत ज़रूरी है। इस तरह का प्रशिक्षण पाठक बनने की राह भी सुगम करता है।

अनिल सिंह पिछले 20 बरसों से भी अधिक समय से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। गए 15 सालों से प्राथमिक शिक्षा ही उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र है। सात सालों तक भोपाल में वैकल्पिक स्कूल के मॉडेल आनन्द निकेतन से जुड़े रहे और वहाँ भाषा व सामाजिक विज्ञान शिक्षण का काम किया। वर्तमान में पराग के लाइब्रेरी एजुकेटर कोर्स में बतौर फ़ैकल्टी जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : bihuanandanil@gmail.com

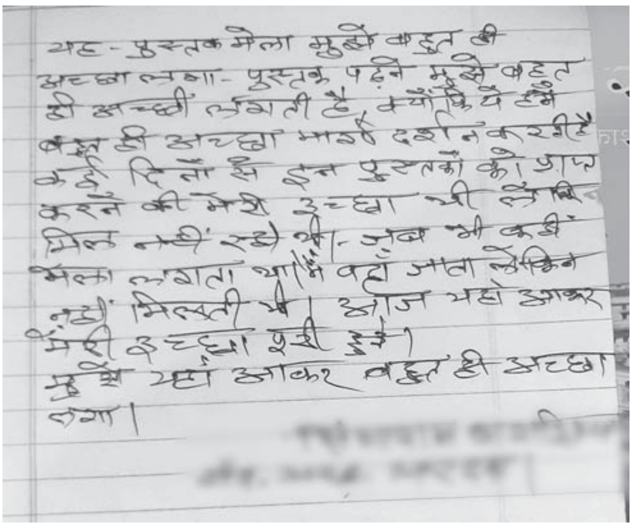
उम्मीद अभी बाक़ी है : एक अनुभव

नीरज श्रीमाल

राजस्थान के एक ज़िले में आयोजित पुस्तक मेले की महज़ एक झलक है इस लेख में। यह झलक काफ़ी कुछ दर्शा जाती है। यह कि, पुस्तकों की उपलब्धता होने से फ़र्क़ पड़ता है; अच्छी पुस्तकें सही दाम पर मिलने पर लोग उन्हें ख़रीदना चाहेंगे; छोटे क़स्बों, गाँवों में भी अभिभावक अपने और अपने बच्चों के लिए पुस्तकें ख़रीदना चाहते हैं, और ख़ुद भी पढ़ने की इच्छा रखते हैं; आदि। सिर्फ़ यह कह देना, कि पढ़ने की संस्कृति नहीं है, ठीक नहीं है। यह सोचना होगा कि ऐसी संस्कृति बनाने के लिए क्या कोशिशें करनी होंगी। –सं.

पुस्तकालय को जीवन्त एवं सक्रिय बनाने के लिए अनेक गतिविधियाँ की जा सकती हैं। इन्हीं गतिविधियों में से एक गतिविधि पुस्तक मेला है, जो बहुत बड़े समुदाय को एक मंच पर जोड़ने के लिए उपयुक्त प्रतीत होता है। ऐसे आयोजनों से समुदाय के हर स्तर के विद्यार्थी, शिक्षा क्षेत्र से जुड़े हुए व्यक्ति, सार्वजनिक और निजी क्षेत्र से जुड़े कार्मिकों के साथ ही उस क्षेत्र के आसपास रह रहे समुदाय तक पहुँच बनाई जा सकती है।

इसी सोच के मद्देनज़र, एक सात दिवसीय पुस्तक मेले का आयोजन अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन और भाषा एवं पुस्तकालय विभाग, राजस्थान सरकार के सहयोग से सिरोही ज़िले के सार्वजनिक पुस्तकालय परिसर में किया गया। इस मेले के दौरान ज़िला मुख्यालय के आसपास के विद्यालयों के बच्चों के साथ दोपहर में कहानी शिक्षण, आर्ट एण्ड क्राफ़्ट, नाट्य शिक्षण, आदि पर काम किया गया। इसके साथ ही सायंकालीन सभाओं में प्रवासियों के साहित्य, मानव के महान बनने की क्रिया, स्थानीय लेखकों से मुलाक़ात, युवाओं के लिए सैन्य एवं क़ानून क्षेत्र में रोज़गार के अवसर, आदि कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। इस दौरान कई नए अनुभवों से गुज़रने का मौक़ा मिला। बच्चों के साथ कई अभिभावक भी इस मेले में आए। इस लेख में, एक ख़ास अनुभव को साझा किया गया है, जिसमें मुझे पढ़ने-लिखने के प्रति जागरूक अभिभावक से रूबरू होने का अवसर मिला।


यह पुस्तक मेला मुझे बहुत ही
अच्छा लगा। पुस्तक पढ़ने मुझे बहुत
ही अच्छी लगती है, क्योंकि ये हमें
बहुत ही अच्छा मार्ग दर्शन करती है
कई दिनों से इन पुस्तकों को प्राप्त
करने की मेरी इच्छा थी लेकिन
मिल नहीं रही थी। जब भी कहीं
मेला लगता था मैं वहाँ जाता लेकिन
नहीं मिलती थी। आज यहाँ आकर
मेरी इच्छा पूरी हुई।
मुझे यहाँ आकर बहुत ही अच्छा
लगा।

यह एक ख़ास अनुभव है। ख़ास इसलिए, क्योंकि यह की जा रही कोशिशों में हमारे आत्मविश्वास को बढ़ाता है, और इस तरह जो प्रयास हम कर रहे हैं, उनको शिद्दत से करने के लिए प्रेरणा और मज़बूती प्रदान करता है। यह अनुभव एक पाठक-अभिभावक से बातचीत का है।

यह बात है मेले के एक दिन सुबह क़रीब 11:00 बजे की। मैं रोज़ की तरह पुस्तकालय परिसर पहुँचा ही था कि एक व्यक्ति मेरे पास आकर मारवाड़ी भाषा में पूछते हैं, "क्या पुस्तक मेला यहीं चल रहा है?" प्रत्युत्तर में मैंने उन्हें बताया, "जी हाँ!" उन्होंने जैसे ही मेरी "हाँ" सुनी, वैसे ही तेज़ गति से पुस्तक मेला परिसर में प्रवेश किया और अलग-अलग तरह की पुस्तकों को बड़ी ख़ुशी से देखने लगे। थोड़ी ही देर बाद उन्होंने अपनी पसन्द की पुस्तक का चयन किया और उसके पीछे लिखी क़ीमत के अनुसार अपनी शर्ट के अन्दर बनियान की जेब से एक थैली-सी निकालकर उसमें से रुपए निकालने लगे। मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ कि पिछले 4 दिनों में वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पुस्तक ख़रीदने से पहले या ख़रीदते हुए किसी भी प्रकार की छूट के बारे में नहीं पूछा, और सीधे ही लिखी क़ीमत देने को तैयार हो गए। मुझे लगा कि इनके बारे में जानना चाहिए, और फिर हमने आपस में बात शुरू की।

उन्होंने मुझे बताया कि उनका नाम मेवाराम गरसिया है, और वह पेशे से एक मज़दूर हैं। वे मज़दूरी के लिए बाली और शिवगंज के आसपास आते हैं। मेवाराम पाली ज़िले में बाली ब्लॉक के अरड़वा गाँव के रहने वाले हैं, और उन्होंने 12वीं कक्षा तक पढ़ाई की है। उन्हें इस पुस्तक मेले की जानकारी स्थानीय दैनिक समाचारपत्र के ज़रिए मिली, और वह अपनी मज़दूरी से छुट्टी लेकर पुस्तकें ख़रीदने आ गए। मैंने उनसे पूछा, "आप इस पुस्तक का क्या करेंगे?" हँसते हुए उन्होंने जवाब दिया, "पहले तो मैं इसे पढ़ूँगा, और फिर अपने बच्चों को पढ़कर सुनाऊँगा।" मेरी जिज्ञासा और बढ़ी। मैंने उनसे उनके बच्चों के बारे में पूछा, "आपके बच्चे क्या करते हैं?" उन्होंने बताया, "मेरे 3 बच्चे हैं। 2 लड़के और 1 लड़की। दोनों लड़के स्कूल पढ़ने जाते हैं। लड़की अभी 3 साल की है, अगले साल स्कूल जाएगी।" इस बातचीत के दौरान पुस्तक विक्रेता भी हमारे पास था और वो भी उनकी बातों से काफ़ी प्रभावित हुआ। पुस्तक विक्रेता उनको उचित छूट पर पुस्तक देने के लिए तैयार हो गया। पुस्तक की क़ीमत में छूट मिलने से मेवाराम के चेहरे पर एक अलग ही ख़ुशी आ गई। वे पूछने लगे, "क्या मैं अपने बच्चों के लिए और पुस्तकें देख सकता हूँ?" इसपर हमने सहमति जताई। फिर क्या था, वह बड़ी ख़ुशी-ख़ुशी एक के बाद एक बहुत सारी पुस्तकें देखने लग गए। सुबह क़रीब 11 बजे से दोपहर 3:30 बजे तक बिना रुके बड़ी खोजबीन कर वे 2 पुस्तकें अपने लिए, और 2 अपने दोनों बेटों के लिए लेकर जाने लगे।



चित्र : हीरा धुर्वे

जाने से पहले वह मेरे पास आए और बताया कि उन्होंने ख़ुद के और अपने बच्चों के लिए पुस्तकें ली हैं। इसपर मैंने उनसे पूछा, "अपनी बेटी के लिए आपने कुछ नहीं लिया?" उन्होंने बताया, "वो अभी पढ़ नहीं सकती है, इसलिए अपने छोटे बेटे के लिए जो कहानी और कविता की किताब ली है, उसे मैं रात को सोने के समय पढ़कर सुनाऊँगा।" मैंने भी उन्हें *प्लूटो* और *चकमक* की एक-एक प्रति देते हुए बताया कि इसमें भी बहुत अच्छी कहानियाँ और कविताएँ छपती हैं। ये भी अपने साथ लेकर जाना। उनके जाने से पहले मैंने उनसे अनुरोध किया कि आपके अनुभव ज़रूर लिखकर जाना। उन्होंने जो लिखा उसकी तस्वीर इस लेख के पहले पेज पर देख सकते हैं।

मेवाराम के जाने के बाद मुझे लगा कि आज भी जहाँ कई लोगों को लगता है कि मोबाइल फ़ोन ने पढ़ने की आदत को ख़त्म कर दिया है, फिर भी कहीं-न-कहीं उम्मीद अभी बाक़ी है। मेवाराम और उनके जैसे बहुत सारे व्यक्ति और अभिभावक अभी भी इस पढ़ने की आदत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ाने हेतु जागरूक हैं।

नीरज श्रीमाल पिछले एक दशक से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के ज़िला संस्थान सिरोही में सन्दर्भ व्यक्ति, पुस्तकालय के पद पर कार्यरत हैं। आपने वर्ष 2010 में पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान में स्नातकोत्तर किया है। ज़िला संस्थान के विभिन्न ब्लॉक के अन्तर्गत संस्था द्वारा संचालित पुस्तकालयों के संचालन में सहयोग कर रहे हैं। संस्था द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा के अन्तर्गत भाषा (हिन्दी) एवं गणित विषय में शिक्षकों के साथ कार्य करने का अनुभव मिल रहा है। पुस्तकालय से जुड़े रहने से उनका पढ़ने एवं लिखने के प्रति विशेष लगाव रहा है।

सम्पर्क : neeraj.shrimal@azimpremjifoundation.org

और पुस्तकालय चल पड़ा
बड़े काम की छोटी–सी शुरुआत

राजाबाबू ठाकुर

मध्य प्रदेश के कुछ विद्यालयों में बच्चों के लिए पुस्तकालय शुरू करने के प्रयासों का विवरण इस लेख में प्रस्तुत है। विद्यालय में पुस्तकालय के लिए किताबें थीं, बच्चे और शिक्षक भी थे, लेकिन काम आसान नहीं था। आसान इसलिए नहीं था क्योंकि बच्चों के किताबों के प्रति ज़िम्मेदार होने को लेकर, उनके सीखने को लेकर विश्वास नहीं था। विद्यालय की स्थितियों, अधिकारियों की माँगों के चलते शिक्षकों का शायद ख़ुद पर भी विश्वास नहीं था। लेकिन पुस्तकालय की ज़रूरत, बच्चों की क्षमता, आदि बिन्दुओं पर बातचीत से, पुस्तकों के सन्दर्भ में मिले सहयोग से शिक्षक ख़ुद पर अपने विश्वास को भी जीत पाए, और बच्चों को भी पुस्तकालय उपलब्ध करवा पाए। असल में, पुस्तकालय स्कूल में ही मौजूद था, और हर स्कूल में मौजूद है। ज़रूरत है अपने प्रति और अपने बच्चों के प्रति विश्वास की। यही विश्वास सहयोग लेने और देने के लिए भी प्रेरित कर सकता है। –सं.

वर्ष 2019 में, मैं एक संस्था के साथ जुड़कर सागर, मध्य प्रदेश के एक ब्लॉक में कुछ स्कूलों के साथ काम करता था। यहाँ मैं शिक्षकों के सहयोगकर्ता के रूप में काम करता था। इस संस्था के साथ काम के दौरान मुझे काफ़ी सारे अच्छे लेखकों की किताबों व लेखों को पढ़ने, और विभिन्न विषयों में अपनी समझ को बढ़ाने का मौक़ा मिला। इन्हीं में से एक विषय था– बच्चों के लिए बाल साहित्य की किताबों का महत्त्व। बहुत–से अच्छे लेखों व किताबों को पढ़कर बच्चों के लिए बाल साहित्य का महत्त्व मुझे कुछ हद तक पता चल गया था। लेकिन चुनौती यह थी कि इसका इस्तेमाल बच्चों के सीखने–सिखाने को बेहतर बनाने में कैसे किया जाए; और कैसे इसके महत्त्व को अच्छे से समझा जाए।

इस सन्दर्भ में मैंने कई स्कूलों के शिक्षकों से बात की। शिक्षकों से जो चर्चा हुई, उसमें बार–बार व्यक्त हुए बिन्दु थे– "नहीं सर! पुस्तकें तो बच्चों को नहीं दी जा सकतीं क्योंकि वो फाड़ देते हैं, और गुमा देते हैं"; "उनकी कहाँ रुचि है पढ़ने में"; "उनसे किताबें देने–लेने का काम कौन करेगा"; आदि। मैंने उनसे बहुत चर्चा की। उनसे कहा, "ये किताबें बच्चों के लिए ही तो हैं। इनसे बच्चे बहुत कुछ सीख सकते हैं, उनकी पढ़ने में रुचि बढ़ेगी। आप किताबों के साथ नई–नई गतिविधियाँ भी बच्चों को करा सकते हैं। इनसे बच्चों का रुझान स्कूल की ओर भी बढ़ेगा, और आपके साथ भी जुड़ाव बनेगा। अगर कुछेक किताब फट जाती हैं या गुम जाती हैं, तब कोई बड़ी बात नहीं होगी। लेकिन अगर बच्चों को किताबें दी जाएँ, इससे वे किताबों का इस्तेमाल करके पढ़ना–लिखना, अभिव्यक्त करना, सुनना, तर्क देना जैसे कौशल सीख सकेंगे।"

लेकिन शिक्षकों के डर को मैं कम नहीं कर पाया। उनसे नियमित बात करते–करते पता चला कि मुश्किलें और भी थीं। उन्होंने बताया कि किताबें गुमने या फटने पर अधिकारी उन्हें डाँटते हैं। तब हमने इस समस्या पर और गम्भीरता से सोचा। हल यह निकला कि मैं अपनी संस्था से



कुछ किताबें अपने नाम पर दर्ज करके स्कूल ले आऊँ। इन किताबों को बच्चों को पढ़ने के लिए दिया जाए। ऐसे में न तो अधिकारियों की नुक़्ताचीनी का डर होगा न ही किताबें खोने या फटने का। हमने यह भी चर्चा की कि इन किताबों को बच्चों को घर भी ले जाने दिया जाए। इसके लिए हमें एक रजिस्टर बनाना होगा जिसमें बच्चों द्वारा ली जा रहीं व वापिस की जा रहीं किताबों का ब्योरा रखा जाएगा। शिक्षकों ने बताया कि रजिस्टर उनके पास है, और हम यह प्रयोग करके देख सकते हैं। लेकिन मेरी एक शर्त भी थी। मैंने शिक्षक साथियों से वादा लिया कि अगर कुछ समय किताबों को इस्तेमाल करने के बाद लगता है कि बच्चे किताबों का इस्तेमाल और रखरखाव ठीक से कर रहे हैं, तब उन्हें अपने स्कूल की किताबें भी बच्चों को उपलब्ध करानी होंगी। शिक्षक साथी इसपर सहमत थे।

तीसरी समस्या शिक्षकों के काम के बोझ की थी। उन्होंने बताया, "हमारे पास पहले ही बहुत काम है, उसपर हम पुस्तकालय को कैसे सँभालेंगे?" बातचीत से इसका हल निकला कि बच्चों को ही पुस्तकालय की ज़िम्मेदारी दी जाए। वे ही अपने साथियों को किताबें दें और वापिस लें। इससे उनमें ज़िम्मेदारी की भावना भी आएगी, और स्कूल के प्रति अपनापन भी। शिक्षक साथियों में इसपर संशय तो था, लेकिन चर्चा, और शायद स्कूल की अपनी किताबें न होने के नाते वे मान गए।

मैंने किताबें स्कूलों में दीं, और हमारा पुस्तकालय शुरू हुआ। लेकिन अब एक बड़ी समस्या को हल करना था। केवल बच्चों को पुस्तकें दे देने-भर से पुस्तकालय नहीं बनता, उसके लिए बच्चों के साथ पुस्तकों से सम्बन्धित गतिविधियाँ भी निरन्तर करनी होती हैं। बच्चों द्वारा पढ़ी जा रहीं (यहाँ चित्रों के माध्यम से पढ़ना भी शामिल है) किताबों पर रोज़ थोड़ा समय निकालकर उनसे बात भी करनी होती है। इससे पता चलता है कि बच्चे किताब को पढ़कर क्या समझ रहे हैं, और क्या वे अपने अनुभवों को उन किताबों से जोड़ पा रहे हैं? किताबों पर बातचीत में बच्चों से छूट गई चीज़ों को जोड़ा जा सकता है। इससे बच्चों की जानकारी में इज़ाफ़ा तो होगा ही, उनकी और किताबें पढ़ने में रुचि भी बढ़ेगी। शिक्षक साथियों ने इस प्रक्रिया को अपनाया, और नतीजे काफ़ी अच्छे रहे।

इस पूरी प्रक्रिया में लगभग 2 वर्षों का समय लगा। इसके आगे भी सतत प्रयास जारी रहे, अब इन स्कूलों में पुस्तकालय चल रहे हैं। इससे बच्चों की रुचि भी बाल साहित्य में बढ़ी है।

इस काम के दौरान मेरी समझ बनी कि शिक्षकों के पास बाल साहित्य की किताबें तो हैं, लेकिन उनका उपयोग कैसे करना है; रखरखाव कैसे होगा; उनके नियमित उपयोग से बच्चों को क्या लाभ होते हैं; इन सवालों पर शिक्षकों के साथ खुली चर्चा, और इसके साथ-साथ इसे करके देखने के लिए प्रोत्साहन, मदद व सामर्थ्य देने की ज़रूरत है। पुस्तकालय और बच्चों के

साथ किताबों के उपयोग के सन्दर्भ में शिक्षकों को किसी प्रकार की ट्रेनिंग भी नहीं दी जाती है। इसके साथ-साथ ग़ैर-अकादमिक कार्यों की अधिकता, पाठ्यक्रम को समय सीमा में पूरा करने की बाध्यता, अधिकारियों का बाल साहित्य के प्रति उपेक्षापूर्ण रवैया, आदि समस्याएँ भी शिक्षकों को बाल साहित्य का उपयोग न करने की ओर धकेलती हैं। लेकिन खुली चर्चा और समझ बनाने के बाद जब एक बार काम शुरू हो गया, तब शिक्षकों को बाल साहित्य पर काम करने में काफ़ी मज़ा आने लगा। शिक्षकों ने कहा, उन्होंने महसूस किया है कि बच्चों की सीखने में रुचि व जितना सीख पाए उसमें भी प्रगति नज़र आती है।

शिक्षकों की बाल साहित्य की समझ

पुस्तकों के साथ गतिविधि कराने और पुस्तकालय की शुरुआत करने से पहले शिक्षकों में बच्चों के लिए रुचिकर पुस्तकों की समझ होना आवश्यक है। इस विषय पर स्कूलों में भ्रमण के दौरान शिक्षकों से चर्चा हुई कि बच्चों के लिए उनके स्तर के अनुसार कैसी और कौन-सी किताबें बेहतर होंगी, और इस चुनाव के आधार क्या होंगे। चर्चाओं से मुझे समझ आया कि शिक्षक इस बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं रखते। उनके लिए किताब बस किताब होती है, चाहे जैसी भी हो। देखने पर शायद कुछ बुनियादी छँटाई कर पाएँ, लेकिन यह बहुत त्रुटिपूर्ण व व्यक्तिपरक होगा। इस चुनाव को उन्होंने किन गुणों के आधार पर किया है, यह वे साझा नहीं कर सकते। बहुत सारी चर्चाओं में यह बात भी बार-बार उभरकर आई कि बच्चों के लिए पाठ्यपुस्तक ही सबसे महत्त्वपूर्ण किताब होती है, उन्हें अन्य किताबों से दूर ही रहना चाहिए। जिन शिक्षकों के साथ काम किया जा रहा था, उनसे इस विषय में धीरे-धीरे चर्चा होती रही।



इस चर्चा से कुछ मुख्य बिन्दु निकलकर आए। मसलन,

- बच्चों की किताबें सुन्दर चित्रों से सुसज्जित होनी चाहिए। जैसे– जानवर, कार्टून, परिवार, पक्षी, आदि के चित्र;
- चित्रों में एक गतिशीलता हो, ताकि बच्चे लिखे हुए टेक्स्ट के बारे में अनुमान लगा सकें;
- किताबें स्तरानुसार हों। शुरुआती स्तर के बच्चों की किताबों में चित्र बड़े हों, लिखा कम हो, और फ़ौंट बड़ा हो। दूसरे स्तर की किताबों में थोड़ा ज़्यादा लिखा हो सकता है। इसी प्रकार आगे के स्तर के बच्चों के लिए किताबें हों;
- किताबों में सामग्री बहुत लम्बी न हो;
- छोटे बच्चों की किताबों में घटनाओं का दोहराव अधिक हो, इससे बच्चों को मज़ा आता है;
- शुरुआत में छोटे बच्चों के परिवेश के साथ जुड़ाव वाली सामग्री हो;
- किताबों में कल्पनाशीलता और तर्क के पर्याप्त मौक़े हों; आदि।

इस चर्चा के बाद शिक्षकों के साथ 'क्या-क्या हो बच्चों की एक किताब में?' लेख साझा किया गया, और इसपर एक सत्र भी आयोजित किया, ताकि शिक्षकों की समझ इस विषय पर

और पुख़्ता हो सके। इस सबसे शिक्षकों को किताबों के स्तरानुसार होने के बारे में, और किस प्रकार की किताबें होनी चाहिए, आदि मसलों पर समझ बनाने में और मदद मिली। (बाद में जब शिक्षकों ने अपने स्कूल में उपलब्ध किताबें बच्चों को दीं, उन्होंने ऐसी किताबों को अलग कर दिया जो बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं थीं। शिक्षकों ने कक्षाओं में भी स्तरानुसार किताबों को ही जगह दी।) स्तरानुसार किताबें क्यों हों, इसपर चर्चा से निम्नलिखित बातें सामने आईं :

1. हर कक्षा में विभिन्न स्तरों वाले बच्चे होते हैं। अगर उनको स्तर के अनुसार किताबें पढ़ने के लिए दी जाएँ, वे इस आत्मविश्वास के साथ पढ़ते हैं कि वे पढ़ सकते हैं। ऐसे में, बच्चे ज़्यादा-से-ज़्यादा किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित होते हैं।

2. स्तरीकरण की पद्धति को लागू करते समय दो बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। एक तो, बच्चों के पढ़ने के कौशल का आकलन किया जाए और तब किताबों को स्तरों में विभाजित किया जाए। जैसा कि ऊपर भी कहा गया है, स्तर के अनुसार किताबें पढ़ने से बच्चे आत्मनिर्भर पाठक बनने की तरफ़ बढ़ते हैं।

3. किताबों के स्तरीकरण से बच्चे स्वयं उपयुक्त किताबों को चुन पाते हैं, और किताबों के भण्डार में से अपनी रुचि अनुसार व अपने स्तर लायक़ किताब ढूँढ़ पाते हैं।

4. स्तरानुसार किताबें होने से बच्चों की प्रगति का आकलन भी आसानी से किया जा सकता है।

5. शिक्षकों में स्तरानुसार किताबों की समझ होने पर वे उपयुक्त स्तरों की किताबें पहचानकर अपने स्कूल व अपनी कक्षा के स्तर की किताबें कक्षा हेतु ख़रीद सकते हैं।

स्कूल में, शिक्षकों ने किताबों को चार स्तरों में बाँटा। स्तर एक में वे किताबें थीं, जिनमें एक पेज पर एक या दो वाक्यों में 5-10 शब्द तक ही लिखे थे। दूसरे स्तर की किताबों में दो-चार वाक्यों में 10-20 शब्दों वाली किताबों को रखा गया। तीसरे स्तर की किताबों में प्रति पेज 5-10 वाक्य और 20-40 शब्द वाली किताबों (15-20 पेज से कम वाली) को रखा गया। बाक़ी की मोटी व अधिक लिखी हुई किताबों को चौथे स्तर पर रखा था। किताबों को स्तरानुरूप छाँटते समय हमने उसमें बने चित्रों व शब्दावली का भी ध्यान रखा। हमने ध्यान रखा कि उनमें ऐसे शब्द हों जो बच्चों को आसानी से समझ आ सकें, और वे जीवन में उनका इस्तेमाल करते रहते हों। स्तरानुसार इस्तेमाल की गईं किताबों की सूची नीचे दी जा रही है–

पुस्तक का नाम	प्रकाशन	स्तर	पुस्तक का नाम	प्रकाशन	स्तर
कुत्ते का एक दिन	एकलव्य	1	*नाना-नानी*	एकलव्य	2
सालाना बाल कटाई दिवस	रीड इंडिया	1	*रमा के तारे*	प्रथम बुक्स	2
नटखट कुत्ता	प्रथम बुक्स	1	*रूमानिया*	प्रथम बुक्स	2
Water	एनबीटी	1	*जंगल किसका*	पराग	2
नाव चली	एकलव्य	1	*सारे मौसम अच्छे*	सहमत	2
चिड़ियाघर की सैर	एनबीटी	1	*महागिरी*	सीबीटी	2

पुस्तक का नाम	प्रकाशन	स्तर	पुस्तक का नाम	प्रकाशन	स्तर
मछली नदी खोलकर बैठी	एकलव्य	1	निराली दादी	प्रथम बुक्स	2
पहलवान जी और केला	प्रथम बुक्स	1	नन्हे चूजे की दोस्त	एकलव्य	2
Three Friends	एकलव्य	1	नोना और सेब का पेड़	एकलव्य	2
क्यों भई क्यों?	प्रथम बुक्स	1	हमारी गाय जनी	एकलव्य	2
Rain	एकलव्य	1	खिचड़ी	एकलव्य	2
भालू ने खेली फ़ुटबॉल	एकलव्य	1	तुमने मेरा अण्डा तो नहीं देखा	एकलव्य	2
नीलोफर की मुस्कान	एकलव्य	1	रूसी और पूसी	एकलव्य	2
मैं भी	एकलव्य	1	चुलबुल की पूँछ	प्रथम बुक्स	2
सात पूँछों वाली चुहिया	प्रथम बुक्स	3	शहर में शेर	प्रथम बुक्स	4
लापता बल्ला	प्रथम बुक्स	3	विश्व विजेता मिर्च	प्रथम बुक्स	4
एक मोर नाचा नहीं	प्रथम बुक्स	3	किमिया	एकलव्य	4
श्रृंगेरी श्रीनिवास ने हँसना सीखा	प्रथम बुक्स	3	मेरी परनानी और मेरी परदादी	प्रथम बुक्स	4
गोकुल के सपने	प्रथम बुक्स	3	सारस	प्रथम बुक्स	4
गुड़िया का भालू	सीबीटी	3	बादशाही पार्क	प्रथम बुक्स	4
दीदी, दीदी, चीज़ें ऊपर क्यों नहीं गिरती हैं?	प्रथम बुक्स	3	कल्लू के किस्से 3 – मंगू माली और अँबिया भूत	प्रथम बुक्स	4
मेरी जोया चली गई	एकलव्य	3	अक्ल बड़ी या भैंस	एकलव्य	4
जिद्दी शन्नो	एकलव्य	3	मिजबान	एकलव्य	4
निराली पोशाक	सीबीटी	3	छुपन-छुपाई	एकलव्य	4
मुनिया ने पाया सोना	एनबीटी	3	छींका-छींक	एकलव्य	4
बिरजू की मुसीबत	एनबीटी	3	अनारको के आठ दिन	राजकमल	4
लाइट्स कैमरा एक्शन	प्रथम बुक्स	4	ध्यान सिंह 'चन्द' : हॉकी के जादूगर	प्रथम बुक्स	4

सूची में दी गई किताबों के अलावा *बरखा* सीरीज़ की समस्त स्तरों की किताबों के साथ और भी बहुत-सी किताबें हमने बच्चों को स्वतंत्र रूप से उपलब्ध कराईं। स्तरानुसार किताबें चुनने के पश्चात शिक्षकों के समक्ष एक समस्या यह थी कि किताबों से सम्बन्धित कौन-सी गतिविधियाँ की जा सकती हैं। हमने साथ मिलकर कुछ गतिविधियाँ खोजीं, और उनपर काम किया। जैसे–

1. स्तर एक के बच्चों के लिए किताब के पाठ से सम्बन्धित चित्र बनाना। उसके नीचे नाम लिखना और उनका लिपि से परिचय कराना;
2. शिक्षक द्वारा चित्र बनाना और चित्र का नाम लिखने हेतु बच्चों को प्रोत्साहित करना, ताकि शुरुआती स्तर के बच्चे पढ़ना-लिखना सीख सकें;
3. किताब से कुछ शब्दों का चुनाव कर उनकी पहचान बच्चों को कराना;
4. चुने हुए शब्दों से उच्च स्तर के बच्चे कोई अन्य कहानी या वाक्य का निर्माण करें;
5. सभी बच्चों के साथ शीर्षक पर चर्चा व चित्रों या कहानी के अनुसार नवीन शीर्षक बताना;
6. स्तर एक के बच्चों से चित्रों के आधार पर कहानी का अनुमान लगवाना;
7. मौखिक रूप से कहानी के अन्त में बदलाव करना;
8. कहानी को आगे बढ़ाना;
9. उच्च स्तर के बच्चों को लिखित में कहानी के अन्त में बदलाव करने हेतु प्रोत्साहित करना;
10. नई कहानी गढ़ना;
11. बिना किसी की मदद के कहानी-कविता से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर खोजना, और उत्तरों के ऊपर तर्क देना;
12. मुखर वाचन, सह पठन, जोड़ों में पठन और स्वतंत्र पठन कराना;
13. कहानी पर नाटक करना, ताकि बच्चे और भी किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित हों व किताबों का आनन्द ले सकें;
14. पढ़ी गईं किताबों में से कुछ शब्दों को कक्षा में स्थान देना, और उन शब्दों पर रोज़ थोड़ा-थोड़ा काम करना; आदि।



शिक्षक कभी-कभी इस प्रकार की और भी गतिविधियाँ बच्चों के साथ करते थे। बाद में इसमें एक अलग तरह की गतिविधि हमने जोड़ी। इस गतिविधि ने हमारे समक्ष बातचीत के व सीखने-सिखाने के नए आयाम खोले। हमने बच्चों को पढ़ी हुई किताब से सम्बन्धित चित्र बनाने को कहा, और उनके बनाए चित्रों पर चर्चा की। हमने चर्चा में बच्चों से पूछा कि उन्होंने वह चित्र क्यों, और क्या सोचकर बनाया। उनसे बड़ी ही कमाल की बातें जानने को मिलीं। चित्र बनाने में किताब के अलावा उनके ढेरों निजी अनुभव शामिल होते



थे। बाद में इन्हीं चित्रों को संकलित कर, और धागे से सिलकर हमने कुछ चित्र किताबें भी बनाईं, जिनका इस्तेमाल अन्य बच्चों ने किया।

पुस्तकालय से सकारात्मक परिवर्तन

कुछ समय तक सभी स्कूलों में मेरे द्वारा उपलब्ध कराई गईं किताबों से ही पुस्तकालय चले। पर जब शिक्षकों को पुस्तकालय के लाभ बच्चों में दिखने शुरू हुए, और उनका किताबें गुमने या फटने का डर भी दूर हुआ, तब उन्होंने वर्षों से सन्दूकों में बन्द किताबों को निकाला, और कक्षाओं में अलमारियों में या रस्सियों पर उन्हें जगह दी। अब कोई भी बच्चा अपने ख़ाली समय में इन्हें ले और पढ़ सकता था। पुस्तकालय से बच्चों की रुचि किताबों में बढ़ी, और कुछ बच्चे जो स्कूल नहीं आते थे, वे भी रोज़ स्कूल आने लगे। एक स्कूल ऐसा था जिसके दो बच्चे कभी स्कूल नहीं आते थे। इस स्कूल में हमने पुस्तकालय की शुरुआत की। बच्चे पहले दिन किताबें घर ले गए, और न आने वाले बच्चों को इस बारे में बताया। अगले ही दिन वे दोनों बच्चे आए, और आते ही सबसे पहले सारी किताबों को उलटना-पलटना शुरू कर दिया। कुछ देर किताबों को देखने के बाद वे मेरे पास आए और पूछा, “क्या हम भी किताब ले सकते हैं?” “हाँ, बिलकुल! ये किताबें आप लोगों के लिए ही तो हैं।” ऐसा जवाब सुनकर वे बहुत ख़ुश हुए, और किताबें ले गए।

इसी तरह की एक और घटना हुई। एक स्कूल में दो शिक्षिकाएँ थीं, और मैं दोनों के ही साथ कार्य करता था। एक शिक्षिका कक्षा 1-3 को पढ़ाती थीं, और दूसरी कक्षा 4 व 5 को। पहली वाली शिक्षिका की कक्षा 3 में एक बच्चे का नाम दर्ज था, लेकिन इन तीन वर्षों में वह बस दो-तीन बार ही स्कूल आया था। मैंने एक दिन उस बच्चे को घर से बुलाया। वह आ तो गया, लेकिन मैडम कहने लगीं, “अभी आप दूसरी तरफ़ मुँह करेंगे, यह भाग जाएगा।” मैंने उस बच्चे से बात करने की कोशिश की, लेकिन उसने कोई जवाब नहीं दिया। मैं उसे गतिविधियों में शामिल करने की कोशिश करता रहा, पर शुरुआत में उसने कोई रिस्पोंस नहीं दिया। बहुत मशक़्क़त के बाद वह कुछ-कुछ गतिविधियों में शामिल होने लगा। इसी स्कूल में शिक्षिकाओं की सहमति व मदद से दोनों ही कक्षाओं में रस्सियों के सहारे किताबों को टाँगकर पुस्तकालय चलाया गया। बच्चों से बोला गया कि वे यहाँ भी ख़ाली समय में किताब पढ़ सकते हैं, और दर्ज कराकर घर भी ले जा सकते हैं। जब बच्चों को स्वतंत्र रूप से किताबें पढ़ने को बोला गया, तब सबसे आगे वही बच्चा आया जो पिछले दिनों तक स्कूल



के नाम तक से डरता था। किताबों से उसके लगाव के कारण धीरे-धीरे यह बच्चा नियमित स्कूल आने लगा, और किताबों के असर से वह कुछ-कुछ शब्दों को पढ़ना-लिखना, अपना नाम लिखना, आदि भी सीख गया।

एक दूसरा वाक़िया एक अन्य स्कूल का है जहाँ बच्चों को किताबें नहीं दी जाती थीं। किताबें न देने के पीछे तर्क यह था कि बच्चों को पढ़ना तो आता ही नहीं, फिर वे किताबों का क्या करेंगे। काफ़ी चर्चा के बाद किताबें निकलवाई गईं, और बच्चों के सामने उनका मुखर वाचन किया गया। तभी एक आश्चर्यजनक घटना हुई। एक बच्चा, जिसे बिलकुल भी पढ़ना नहीं आता था, यहाँ तक कि अक्षर पहचान तक में उसे समस्या थी, वह शिक्षिका के आगे-आगे पढ़े जा रहा था और अन्य बच्चों को भी बता रहा था, क्योंकि वह पढ़ी जा रही किताब को पहले सुन चुका था। इस घटना से किताबें देने और उन्हें पढ़कर सुनाने में शिक्षिका का भरोसा बढ़ा। उन्होंने किताबों से सम्बन्धित नियमित गतिविधियाँ कराना, व बच्चों को किताबें देना भी शुरू किया। इस प्रक्रिया से सीखकर अब वे पाठ्यपुस्तकों को भी बच्चों से बातचीत और मुखर वाचन करके ही पढ़ाने लगीं।

असल में, पुस्तकें केवल पढ़ने व प्रश्नों के उत्तर खोज लेने के लिए नहीं होतीं, बल्कि वे तो पढ़कर आनन्द लेने, अनजानी जगहों की सैर करने, अनदेखी चीज़ों को चित्रों-शब्दों के माध्यम से देखने-सोचने का मौक़ा देती हैं। वे किसी विषय पर कल्पना करने, सोचने, तर्क करने, अतीत या भविष्य में ले जाने जैसे और भी न जाने कितने काम करती हैं, इसलिए बच्चों के सीखने में इनका महत्त्व बहुत अधिक है। असल में, यह कह सकते हैं कि पुस्तकों की दुनिया में खोकर पाठक जीवन के मर्म को और गहराई से समझ सकता है।

राजाबाबू ठाकुर, वर्तमान में एकलव्य संस्था में बतौर प्रोजेक्ट एसोसिएट कार्यरत हैं। इन्हें पढ़ना, लिखना और ऐतिहासिक जगहों पर घूमना पसन्द है।

सम्पर्क : rajathakur8530@gmail.com

कविता शिक्षण और पढ़ना

ओम प्रकाश विश्वकर्मा

शुरुआती कक्षाओं में भाषा शिक्षण में कविता की भूमिका से हम सभी परिचित हैं। कक्षा में कविता अलग-अलग तरह से खुलती हुई नज़र आती है। इस लेख में कविता पर बच्चों के साथ काम करने के अनुभव हैं। शिक्षक बताते हैं कि उन्होंने अलग-अलग स्तर के बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने का काम किया, और उस काम में कविता काफ़ी मददगार साबित हुई। इस काम के लिए उन्होंने क्या तैयारी की, यह भी वे बताते हैं। -सं.

कविता ही क्यों ?

बच्चों को कविताएँ सुनना रुचिकर लगता है। वे ख़ासकर ऐसी कविताएँ सुनना पसन्द करते हैं जिनमें उनका जाना-पहचाना सन्दर्भ, परिवेश होता है, जिनमें तुकबन्दी और लय होती है, और जो समझने में सहज होती हैं। मैंने अपनी कक्षा में कई कविताओं पर काम किया था। इनसे मैं बच्चों के लिए समझकर पढ़ने के अवसर गढ़ना चाह रहा था। बच्चों को पढ़ना-लिखना सीखने के साथ ही उन्हें अनुभव साझा करने, अपनी बात जोड़ने, और भाषा विकास के मौक़े भी उपलब्ध हों, यह मेरी कोशिश थी। कविता पर काम करते हुए मेरे मन में एक और योजना थी कि बच्चों को कविता के आधार पर सोचने, और उसे आगे बढ़ाने की ओर लेकर आया जाए।

कक्षा में मैंने जिन मुख्य बिन्दुओं / प्रतिफलों पर काम किया, वह निम्न हैं :

कही जा रही कविता को समझते हुए सुनना;

उसपर प्रतिक्रिया देना;

तुकान्त शब्दों का निर्माण करना;

किसी नई कविता का निर्माण करना;

अपने अनुभवों के आधार पर दी गई कविता को आगे बढ़ाना; और

चित्रों के आधार पर पात्र, घटनाओं, और कविता का अनुमान लगाना।

पूर्व आकलन

कक्षा शिक्षण के दौरान मैंने यह देखा और समझा कि बच्चे कई प्रकार की कविताएँ मौखिक रूप से बोलते हैं, और लयबद्धता से बाल सभा में भी सुनाते हैं। ये कविताएँ पाठ्यपुस्तक से इतर होती थीं। मैंने तब यह महसूस किया कि कविताएँ बच्चों के पढ़ना-लिखना सीखने में मदद करेंगी। कक्षा 3-5 के बच्चे पढ़ने-लिखने के विभिन्न स्तरों पर थे। क़रीब 30 फ़ीसदी बच्चे ही पढ़कर समझ पाते थे। क़रीब 40 फ़ीसदी बच्चे किसी कविता अथवा कहानी के आधार पर अपने अनुभव और अपनी बात साझा कर पाते थे। बाक़ी पढ़ना सीखने की प्रक्रिया में थे। इसी तरह, ऐसा कोई बच्चा नहीं था जो कविता के आधार पर उसमें नए चरण जोड़ पाता हो। एक बड़ी चुनौती यह भी थी कि विभिन्न ज़रूरतों वाले, और उन ज़्यादातर बच्चों के साथ कैसे काम किया जाए, जो अभी पढ़ना-लिखना सीख ही रहे हैं।

पूर्व तैयारी

कविता पर काम से पहले मैंने अलग-अलग प्रकार की तैयारी की। कविता से पढ़ना-लिखना सीखने के मौक़े बनाने के लिए पहले शब्दचित्र, कविता पोस्टर, वाक्य पट्टी, शब्द पट्टी, आदि का निर्माण किया। हर कविता को कक्षा में पढ़ाने से पहले मैंने ख़ुद कविता को न सिर्फ़ पढ़ा, बल्कि याद किया। एक शिक्षक के रूप में मुझे लगा कि यदि मुझे कविता मौखिक तौर पर याद नहीं होगी, तब न मैं मज़े से उसपर काम कर पाऊँगा न ही बच्चे कर पाएँगे। याद करने से कविता को हाव-भाव के साथ कर पाने में भी मदद मिलती है। कविता के हाव-भाव, किस लय में इसे किया जाए, इसपर भी मैंने सोचा और काम किया।

इसी तरह, मैंने यह भी सोचा कि कविता से बच्चों के किन अनुभवों पर, और किस प्रकार बात की जाए। यह भी कि वे सवाल कौन-से होंगे, जो बच्चों को अपने अनुभव साझा करने के मौक़े देंगे। मैंने इसके लिए, और कविता में नए चरण जोड़ने के लिए पूर्व तैयारी के रूप में भी सवाल बनाए।

इसके बाद तीन समूहों का निर्माण किया। पहले समूह में वे बच्चे थे जो शब्दों को हिज्जे करके पढ़ते थे, और दूसरे समूह में वे जो शब्दों और वाक्य को पढ़ते थे। तीसरे समूह में ऐसे बच्चे थे जो कविता पढ़कर समझ लेते थे, लेकिन न अपने अनुभव जोड़ पाते थे न ही उसे अपने शब्दों में बता पाते थे।

सामान्य प्रक्रिया

मैंने सभी कविताएँ हाव-भाव के साथ गाईं, और बच्चों ने भी मेरे साथ गाया। इस वक़्त सभी समूह एक साथ ही बैठे। हर कविता पर बच्चों से बातचीत की गई, और उनके अनुभवों को जाना गया। मसलन, आपने किन-किन जानवरों को देखा है; जंगली और पालतू जानवरों के बारे में बातचीत; क्या आपके घर कोई पालतू जानवर है; उसके साथ का कोई अनुभव बताना; अलग-अलग जानवरों की आवाज़ों पर बातचीत करना; किसी एक जानवर की आवाज़ निकालकर सुनाना; जानवर क्या-क्या खाते हैं; आदि पर विस्तृत चर्चा की गई। इस दौरान मैंने यह सुनिश्चित किया कि सभी बच्चों को अपने-अपने अनुभव सुनाने के मौक़े मिलें। बच्चों को भी बारी-बारी से कविता को हाव-भाव के साथ करने के मौक़े दिए। यहाँ शुरुआत में कुछ बच्चे कविता को हाव-भाव से कर पा रहे थे, लेकिन कुछ नहीं कर पा रहे थे।

इस तैयारी के बाद पहला चरण पोस्टर के माध्यम से कविता के लिखित रूप को बच्चों के सामने प्रस्तुत करना था।

चरण 1

कविता पोस्टर के माध्यम से बच्चों का कविता के लिखित रूप से परिचय कराया गया। बच्चों के साथ कुछ सवालों पर भी बातचीत हुई। इस प्रक्रिया में मेरा प्रयास यह था कि बच्चों के साथ कविता के मौखिक रूप पर कुछ और काम करने के साथ ही कविता के प्रसंग से सम्बन्धित उनके अनुभवों को कक्षा में रखने का मौक़ा उन्हें दिया जाए। मैंने बच्चों के साथ नीचे तालिका में दिए गए कुछ सवालों पर चर्चा की जिनमें उन्हें भाषा विकास के अलग-अलग प्रकार के मौक़े मिले :

सवाल जिनपर चर्चा हुई	किस प्रकार का मौक़ा मिला
कविता किस बारे में है?	सूचनात्मक प्रश्न
क्या आपने हाथी देखा है? यदि हाँ, तो कहाँ? हाथी क्या-क्या खाता है?	अनुभव साझा करना, भाषा के इस्तेमाल के मौक़े
हाथी हमारे आसपास क्यों दिखाई नहीं देता है?	कारण सोचने के मौक़े देना
यदि हाथी हमारे गाँव में रहने लग जाएँ, तब क्या होगा?	अनुमान लगाना

चरण 2

इस चरण में मेरा प्रयास यह था कि मुख्य रूप से पढ़ना-लिखना सीख रहे बच्चों के साथ काम किया जाए। अब बच्चों ने कविता के मौखिक रूप को अच्छी तरह जान-पहचान लिया था, और उसकी लिपि को भी देख लिया था। मैंने पोस्टर पर उँगली रखकर बच्चों को कविता पढ़कर बताई, और इसके बाद बारी-बारी से बच्चों को उसे पढ़ने के मौक़े दिए। मैं यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि बच्चे अभी वर्ण नहीं जानते थे, लेकिन वे कविता के वाक्यों और शब्दों को चित्र के रूप में पहचानने लगे थे। जब मैंने शुरुआत में इस प्रक्रिया पर काम शुरू किया, तब यह मुझे बहुत आश्चर्यजनक लगा था। बच्चे कविता के वाक्यों और शब्दों को पहचान पा रहे थे, यह देखकर मुझे एक सुखद अहसास हुआ। यहाँ इस बात पर ग़ौर करना ज़रूरी है कि बच्चे कविता के लिखित रूप की पहचान क्यों कर पा रहे थे। शायद इसलिए, क्योंकि बच्चों को कविता का मौखिक रूप याद था, और फिर अनुमान की सहायता से कविता के लिखित रूप एवं उसके क्रम को समझने में, मैं उनकी मदद कर रहा था।

चरण 3

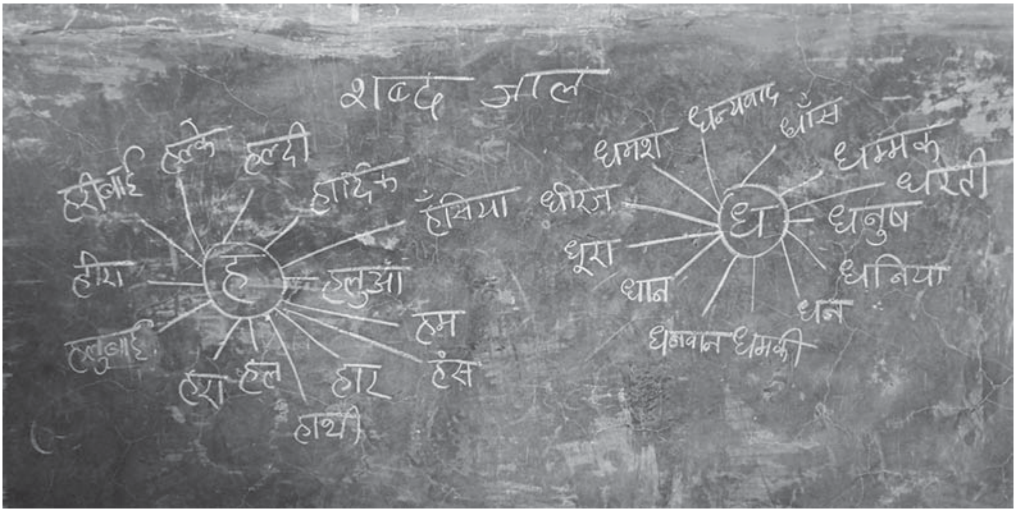
इस चरण में जो वाक्य पट्टी बनाई गई थी उसके साथ काम किया गया। कविता की अलग-अलग पंक्तियाँ चार्ट पेपर पर लिखकर उन्हें एक क्रम में जमाने के लिए बच्चों को दी गईं। इस दौरान एक बच्चा कविता पट्टी को जमा रहा था, और बाक़ी बच्चे पूरी कविता का मौखिक गायन कर रहे थे। यदि इस प्रक्रिया पर आप ध्यान दें, और सोचें कि बच्चे पट्टी क्यों जमा पा रहे थे, तो वही चीज़ें उनकी मदद कर रही थीं जो कविता के मौखिक रूप की पहचान करने में उनकी मदद कर रही थीं। कविता के क्रम और अनुमान की सहायता से बच्चे कविता की पट्टियों को एक क्रम में जमा रहे थे। इसमें मानो पिछली कुछ प्रक्रियाओं का दोहराव चल रहा था। इस प्रक्रिया के बाद मैंने शब्द पट्टी पर कार्य किया। इसमें बच्चों को कविता से जुड़े शब्दों को उसी क्रम में जमाना था, जिस क्रम में वे कविता में आए थे। इस पूरी प्रक्रिया में शुरुआत में बच्चों को परेशानी हुई, लेकिन दो दिनों तक काम करने के बाद बच्चे इसे ठीक से जमाने लगे। अब इस कविता से जुड़े शब्दों को बच्चे पहचानने लगे थे।

चरण 4

जैसा कि मैंने ऊपर कहा, प्रत्येक चरण पर कार्य करते हुए कुछ चीज़ें नियमित रूप से दोहराई जाती थीं। जैसे– कविता को गाना या हाव-भाव से करना, कविता के प्रसंग से जुड़े बिन्दुओं पर बातचीत करना, आदि।

यहाँ तक आते-आते बच्चे कविता को समझने और शब्दों व वाक्यों को पहचानने लगे थे। अब मुझे पढ़ने के डिकोंडिंग वाले पहलुओं पर कार्य करना था। मैंने 'धम्मक धम्मक आता हाथी' कविता से हाथी, आता, जाता, पानी, धम्मक, आदि शब्दों का चुनाव करके उसपर कार्य करवाया। हाथी शब्द की पहली ध्वनि क्या है; 'ह' और 'हा' से क्या-क्या होता है; और इससे जुड़े शब्दजाल; आदि पर बच्चों के साथ काम किया। इसी तरह आता, जाता, पानी, आदि जैसे दूसरे शब्दों की पहली ध्वनि पर काम करवाया। यहाँ बच्चों को एक और बात स्पष्ट हुई कि एक वर्ण से केवल एक ही शब्द नहीं बनता। माने, 'ह' से केवल हाथी नहीं होता, हार भी होता है, हल भी, और हलवा भी होता है। मतलब, एक वर्ण व उसकी ध्वनि के कई सन्दर्भ बच्चों को मिले।

अगली प्रक्रिया में बच्चों को कविता के आधार पर चित्र बनाने के मौक़े दिए गए। हाथी जो-जो करता है, बच्चों ने उस प्रसंग से सम्बन्धित अपने अनुभव बताए। उन्होंने हाथी के नहाने, केला खाने, घूमने, आदि से सम्बन्धित चित्र भी बनाए। यदि आप यहाँ ग़ौर करें तो बच्चों ने यांत्रिक चित्र नहीं बनाए। जंगल में घूमते हुए हाथी का चित्र बनाना आमतौर पर



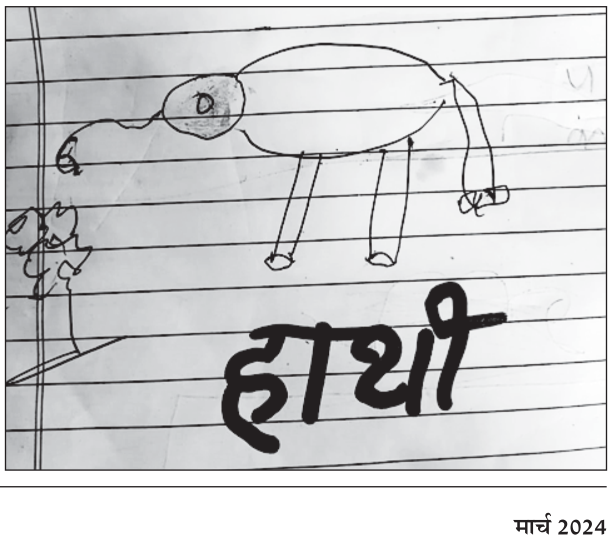
बनने वाले झण्डे, आम, घर, आदि के बनाए चित्रों से अलग है। साथ ही यहाँ बच्चों को सृजनात्मक अभिव्यक्ति की प्रक्रियाओं में भी शामिल होने का मौक़ा मिला।

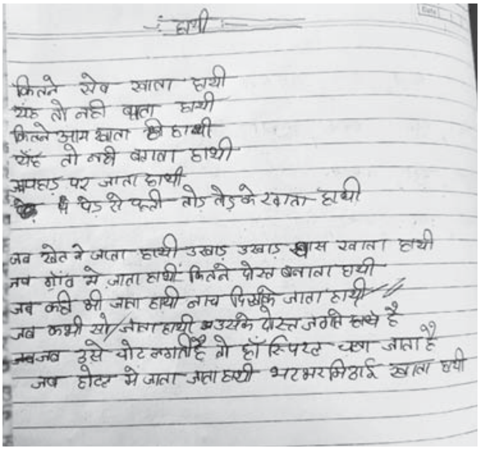
चरण 5

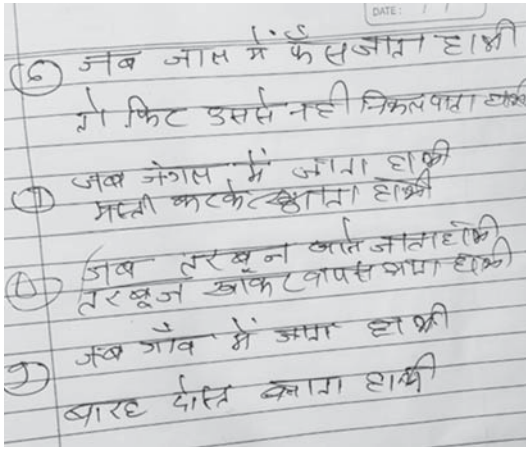
इस चरण में बच्चों के साथ कविता की तुकबन्दियों की पहचान और कविता में नए चरण जोड़ने पर काम किया गया। बच्चों को कविता में नए चरण जोड़ने को कहा गया। शुरुआत में बच्चों ने कहा कि उनसे नहीं होगा। इसके बाद मैंने ब्लैकबोर्ड पर उन कुछ चीज़ों की सूची बनाई कि हाथी क्या-क्या करता है। मसलन, वह खाता है, घूमता है, मदद करता है, खेलता है। अब बच्चों ने बताया कि हाथी जंगल जाता है, हाथी घास खाता है, गन्ना खाता है, तरबूज़ खाता है, छुपन-छुपाई खेलता है, नाचता है, आदि। इस तरह बच्चों ने कुछ व्यवहारिक और अपने अनुभव से जोड़कर कुछ काल्पनिक अभिव्यक्ति भी की।

इसके बाद भी बच्चे कविता में नया चरण नहीं जोड़ पा रहे थे। मैंने यहाँ बच्चों को एक हिंट दी– 'गन्ना पत्ती खाता हाथी, अपनी पूँछ हिलाता हाथी'। यह बच्चों को बेहद मज़ेदार लगा, और इसके बाद वे अपने-अपने समूहों में सोचने लगे। इस दौरान समूहों में, मैं उनकी मदद कर रहा था। बच्चों ने वाक्यों में अभिव्यक्ति की और उसे









लिखा। बच्चों ने बताया कि हाथी अपने दोस्तों के साथ घूमता है, मिलजुलकर खेलता है। यहाँ मैंने उन्हें कहा कि इसे कविता के चरण में बताओ। उन्होंने बताया, 'दोस्तों संग पत्ती खाता हाथी, मिलजुलकर खेल खेलता हाथी'।

अब बच्चों ने नीचे बताए अनुसार कविता में अलग-अलग चरण जोड़े :

क्र.सं.	बच्चों के द्वारा जोड़े नए चरण
01	जब पहाड़ पर जाता हाथी ख़ूब उछल-कूद मचाता हाथी
02	जब पहाड़ी से गिर जाता हाथी घर जाकर पट्टी बँधवाता हाथी
03	गाँव-गाँव में जाता हाथी मुतका अमरूद ले आता हाथी
04	जब जाल में फँस जाता हाथी तो फिर उससे नहीं निकल पाता हाथी
05	जब गाँव में जाता हाथी बारह दोस्त बनाता हाथी
06	जब कहीं भी जाता हाथी दाँत दिखाकर आता हाथी

बाद का आकलन और अपेक्षित परिणाम

मैंने इस तरह क़रीब 12 कविताओं पर काम किया। कविता पर काम करने से पहले जिन बच्चों को पढ़ने, मौखिक अभिव्यक्ति, और सोचने में चुनौती थी, उनके साथ कुछ हद तक काम हो सके हैं। 12 कविताओं और उनसे सम्बन्धित अनुभवों से निकलकर आए क़रीब 150 शब्दों पर काम हो सका। यहाँ बच्चे इन कविताओं और इनसे सम्बन्धित शब्दों को पहचानने लगे थे। इस दौरान, कविता के शब्दों से निकलकर आए कई वर्णों पर भी बच्चों के साथ काम किया।

दूसरे और तीसरे समूह के बच्चों को कविता के आधार पर सोचने, नई तुकबन्दियाँ बनाने, और कविता में नए चरण जोड़ने के मौक़े मिले। बच्चों ने कई कविताओं में नए चरण जोड़े। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान बच्चों ने पाठ्यपुस्तक की कविताओं पर भी काम किया। जो बच्चे पहले पढ़ नहीं पाते थे, अब पढ़ने की शुरुआत करने लगे। माने, बच्चे पुस्तकालय और *बरखा* सीरीज़ की शुरुआती स्तर की पुस्तकों को पढ़ने लगे और उनपर कक्षा में बातचीत करने लगे थे।

क़रीब 30 फ़ीसदी बच्चों, जिन्हें पढ़ना सीखने में मुश्किल आती थी, ने पढ़ने की शुरुआत की। कविता पर कार्य करते हुए यह बेहद सुखद अहसास था।

चुनौतियाँ एवं समझ

इस प्रक्रिया में, मैं यह समझ पाया कि बच्चों के साथ भाषा पर समग्रता में और अर्थ वाली कविता-कहानी के साथ काम किया जाना

चाहिए। पहली बात, कोई भी भाषा, चाहे वह हमारे परिवेश की ही क्यों न हो, हम समग्रता में ही सीखते हैं। दूसरी बात, बच्चों के साथ विभिन्न समूहों में उनकी ज़रूरतों के मुताबिक़ काम किया जाना चाहिए। हालाँकि, यह चुनौतीपूर्ण होता है, लेकिन यदि शिक्षक को यह पता है कि अलग-अलग ज़रूरतों वाले बच्चों को उद्देश्यपूर्ण ढंग से किस तरह शामिल करना है, यह काम आसान हो जाता है। जैसे– जब बच्चे कविता में नए चरण जोड़ रहे थे, तब विभिन्न समूहों में वे बच्चे भी शामिल थे जो लिख नहीं सकते थे, लेकिन उन्होंने नए चरण बनाने में मौखिक रूप से दूसरे बच्चों की मदद की।

तीसरी बात, जहाँ बच्चों को सोचने के मौक़े देने हैं वहाँ एक शिक्षक के रूप में मैं उन्हें उत्तर बताने से बचूँ। जैसे– जब बच्चे कविता में नए चरण जोड़ रहे थे, मैंने उन्हें हिंट देकर आगे स्वयं से सोचने हेतु प्रेरित किया। इसके बाद बच्चों ने समूह में कविता में कई सारे नए चरण शामिल किए। चौथी बात, एक शिक्षक के रूप में धैर्य रखना बेहद ज़रूरी होता है। जैसे– जब कुछ बच्चे कविता के मौखिक और लिखित रूप को शुरुआत में नहीं पहचान पा रहे थे, मैं यह समझ सका कि यहाँ इस बच्चे को कविता के मौखिक रूप की समझ नहीं है। इसलिए उसपर पहले काम किया।

आगे की योजना

कविता पर इस तरह की प्रक्रिया के बाद, बच्चों के साथ कविता में अर्थ पर कैसे काम करें, इसपर आगे की प्रक्रिया करनी है। कविता पर काम करने के बाद, बच्चों के साथ कहानी शिक्षण की प्रक्रिया पर कैसे काम किए जाएँ, इसपर योजनाबद्ध तरीक़े से काम की योजना है।

ओमप्रकाश विश्वकर्मा शासकीय प्राथमिक शाला, भूसा विकासखण्ड, खुरई, सागर पदस्थ हैं। वे पिछले 17 वर्षों से प्राथमिक शिक्षक के रूप में कार्यरत हैं। साथ ही विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षणों में प्रशिक्षक के रूप में भी योगदान देते हैं। इनकी रुचि बाल साहित्य को पढ़ने-समझने में है।

सम्पर्क : opv32511@gmail.com

कविता शिक्षण के मज़े

धर्मपाल गंगवार

कक्षा में बच्चों के साथ एक कविता पर काम करने के सिलसिलेवार अनुभव इस लेख में हैं। यह कविता पाठ्यपुस्तक की नहीं है, बल्कि भाषा सीखने-सिखाने का काम करने के लिए शिक्षक ने चयनित की है। पूरी अन्तर्क्रिया में बच्चे गर्मजोशी से भागीदारी करते हैं, कविता का अर्थ पकड़ लेते हैं, प्रश्नों के उत्तर देते हैं, लिखते हैं, और उस कविता को अन्य रचनाओं से, कविता के पात्र को अन्य पात्रों व ख़ुद से भी जोड़कर देख पाते हैं। सीखने के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पाठ्यपुस्तक से इतर जाकर भी कक्षा में काम हो सकता है, इसका एक अच्छा उदाहरण यह लेख प्रस्तुत करता है। -सं.

भूमिका

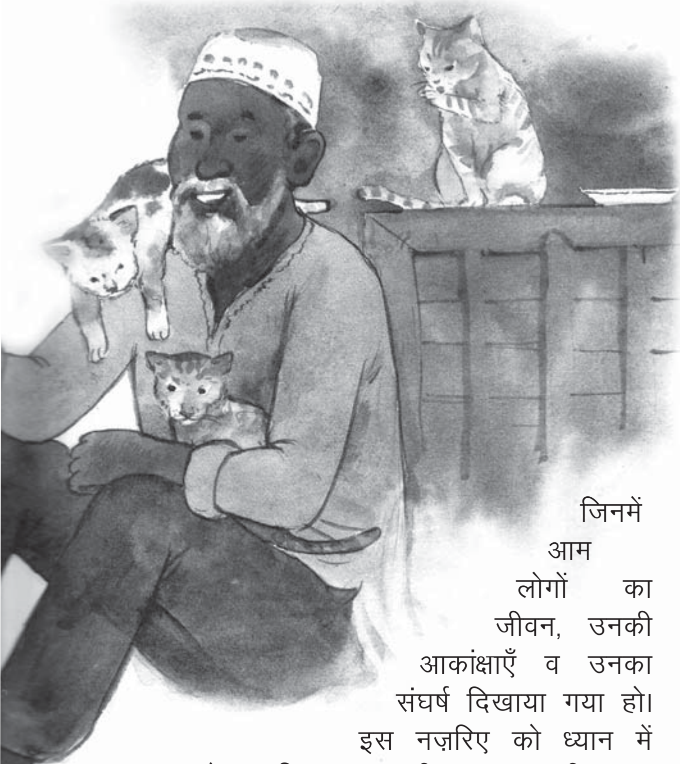
कविता भाषा सीखने-सिखाने का एक मज़ेदार साधन हो सकती है। यदि कविता बच्चों के परिवेश से जुड़ी हुई हो, उनके समझने के स्तर की हो, वह और भी अधिक रोचक व आनन्ददायी हो जाती है। बच्चों की पृष्ठभूमि व स्तर के अनुसार चयन की गई कविता उनसे जुड़ाव बनाने में मदद करती है। बच्चे ऐसी कविताओं से अच्छी तरह से जुड़ जाते हैं। पाठ्यपुस्तक से इतर कविताएँ भी बच्चों के लिए रोचक होती हैं। वे उन्हें सोचने के अधिक मौक़े देती हैं, और जल्दी ही याद भी हो जाती हैं। कविता पढ़ते हुए बच्चे गुनगुनाते हैं तो उन्हें आनन्द की अनुभूति होती है। बच्चों में मौखिक भाषा के विकास के लिए भी कविता एक बढ़िया साधन है। मौखिक भाषा विकास बच्चों को स्वतंत्र लेखन में मदद करता है। इसके उदाहरण भी लेख में दिए गए हैं।

कक्षा में कविता पर काम

हमारे सरकारी विद्यालयों में बच्चों की पृष्ठभूमि को लेकर विविधता होती है। कुछ किसानों के बच्चे होते हैं और कुछ समाज के छोटे-मोटे, लेकिन बहुत ज़रूरी कार्य करने वाले लोगों जैसे– नलसाज, बढ़ई, रिक्शा चालक, आदि के। यह विविधता बच्चों के समग्र विकास के लिए बहुत अच्छी चीज़ है। हमारी पाठ्यपुस्तकों में भी हमें कुछ पाठ इन सन्दर्भों के मिल जाते हैं



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया



जिनमें आम लोगों का जीवन, उनकी आकांक्षाएँ व उनका संघर्ष दिखाया गया हो। इस नज़रिए को ध्यान में रखते हुए शिक्षक ख़ुद भी इस तरह की पाठ्य सामग्री का चयन कर सकते हैं। प्रभात द्वारा लिखी गई एक ऐसी ही कविता है– ‘रमजान मियाँ’। यह कविता बच्चों के परिवेश से जुड़ती है, और उन्हें कविता के मज़े लेने व बातचीत करने का बढ़िया अवसर देती है। इस कविता में कमाल की तुकबन्दी है जो अन्यत्र कम ही देखने को मिलती है। बिल्लियाँ, गिल्लियाँ, कंचियाँ, किश्तियाँ, फब्तियाँ जैसे शब्द पढ़ते हुए बच्चे ख़ूब मज़ा लेते हैं, और बातचीत करते हैं। एक और ख़ास बात कि यह कविता नए शब्दों को भी रच रही है, किरकिट (क्रिकेट) और चालिस (चालीस) को ख़ास अन्दाज़ में लिखा गया है। इस कविता को आप इस लेख के पेज 1 और 3 पर पढ़ सकते हैं।

शुरुआती बातचीत

कक्षा 5 के बच्चों को रमजान मियाँ का चित्र दिखाते हुए मैंने पूछा, “बताओ चित्र में क्या दिखाई दे रहा है?” एक बच्चे ने कहा, “कोई दादाजी लग रहे हैं।” इसके साथ कई बच्चे बोल उठे, “हाँ-हाँ दादाजी ही हैं। उनके ऊपर बिल्लियाँ लदी हैं।” मैंने कहा, “ठीक है। देखिए, इनका नाम है रमजान मियाँ। रमजान मियाँ पर मेरे पास एक कविता है, जिसे आज हम लोग पढ़ेंगे। रमजान मियाँ थोड़े मनमौजी इंसान हैं। ऐसे लोग तुम्हें अपने आसपास भी दिखाई दे सकते हैं। वे कैसे व्यक्ति हैं; क्या-क्या करते रहते हैं; उनके शौक़ क्या हैं? यह सब हम इस कविता में पढ़ेंगे। तो शुरू करते हैं कविता रमजान मियाँ...।”

कविता शिक्षण : पहला दिन

शुरुआती बातचीत के बाद कविता लिखते हुए बच्चों से कहा गया कि कविता बोर्ड पर लिखी जा रही है, आप लोग साथ-साथ पढ़ते जाइए। एक-एक अन्तरे को, बोली के उतार-चढ़ाव के साथ बोलते हुए कविता बोर्ड पर लिखी गई। ‘ओ मेरी जान मियाँ, ओ रमजान मियाँ। क्या ख़ूब शौक़ पाले हैं, पाली हैं बिल्लियाँ।’ बच्चे साथ-साथ कविता पढ़ने की कोशिश करने लगे। धीरे-धीरे उन्हें आनन्द आने लगा। पूरी कविता लिख जाने पर कुमकुम तपाक से बोली, “कविता कितनी मस्त लग रही है!” अन्य बच्चों ने भी कहा कि कविता बहुत अच्छी लग रही है। इसके बाद बच्चों ने बारी-बारी से बोर्ड पर लिखी हुई कविता देख-देखकर पढ़ी। जतिन ने प्रिंटआउट से कविता पढ़ी, क्योंकि उसे रमजान मियाँ का चित्र बहुत अच्छा लगा। इसलिए उसे पास से चित्र देखना भी था और बनाना भी। जतिन को चित्र बनाना अच्छा लगता है। इसी बीच एक बच्चे ने कहा, “जैसे बिल्लियाँ चाचा को गुदगुदी कर रही हैं, वैसे ही यह कविता भी गुदगुदी कर रही है।” एक अन्य बच्चे ने कहा, “रमजान मियाँ बच्चों की तरह काम करते थे।” बातचीत को आगे बढ़ाते हुए पूछा गया, “यह कविता किसने लिखी है?” बच्चे ज़ोर से चिल्लाए, “प्रभात ने।” सब बच्चे कक्षा में बैठे प्रभात की ओर देखकर मुस्कुराने लगे। इसके बाद बोर्ड पर प्रश्न लिखकर मैंने पूछा, “कविता किसके बारे में है?” सभी बच्चों ने एक स्वर में उत्तर दिया, “रमजान मियाँ के बारे में।” फिर दूसरा प्रश्न लिखा गया और पूछा, “बताओ,

रमजान मियाँ के क्या-क्या शौक़ थे?" सबसे पहले जतिन बोल उठा। उसने बताया, "उन्हें बिल्लियों का शौक़ था। वे बिल्लियों से ख़ुश रहते थे तभी तो बिल्लियाँ उनके ऊपर लदी रहती थीं।" अनुज ने कहा, "उन्हें साइकिल का शौक़ था।..." इसी बीच आतिफ़ा ने कहा, "इसीलिए तो साइकिल पर निरी घण्टियाँ लगाए रहते थे।" जतिन ने कहा, "उन्हें कंचे खेलने का भी शौक़ था।" साथ ही उसने यह भी कहा कि बूढ़े लोग कंचे खेलते हुए कैसे लगते होंगे! सब हँसने लगे। कुमकुम बोली, "उन्हें क्रिकेट का भी तो शौक़ था।" अब अन्य बच्चे वही बातें बता रहे थे जो अब तक बताई जा चुकी थीं।

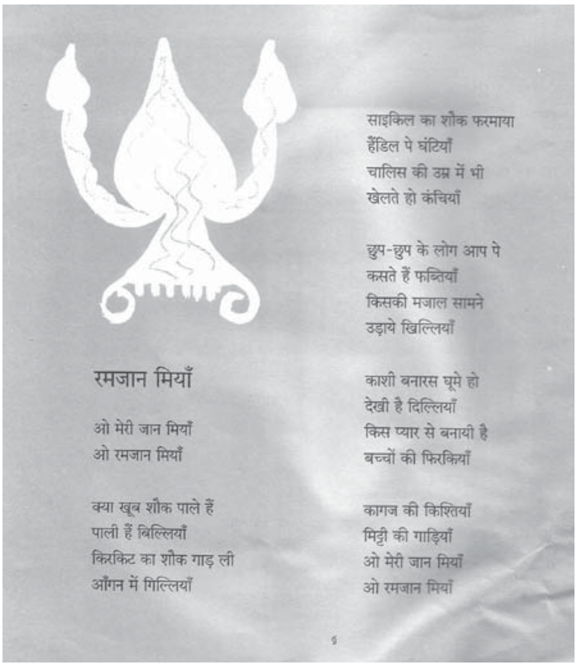
इसी बीच मैंने कविता को फिर से पढ़कर सुनाया। इस बार शायरा बी ने कहा, "वे घूमने के शौक़ीन थे। घूमते रहते थे इसीलिए तो दिल्ली देख आए थे।" शाइस्ता ने बताया, "वह बच्चों के लिए खिलौने भी बनाते थे।" सभी बच्चों ने बारी-बारी से रमजान मियाँ के शौक़ बताए। मैंने कहा, "अभी आपने रमजान मियाँ के जो शौक़ बताए हैं, उन्हें अपनी कॉपी पर लिखते जाइए।" अधिकतर बच्चे लिखने लगे, और कुछ असहज महसूस करते हुए इधर-उधर ताकने लगे। इसके लिए बच्चों को मिलाकर दो समूह बनाए गए। फिर बातें करते हुए बच्चे लिखने में मशग़ूल हो गए।

अब मैंने बोर्ड पर अगला प्रश्न लिखा, "रमजान मियाँ क्या-क्या करते थे?" कई बच्चे बताने के लिए एक साथ बोल उठे। सबसे पहले मुनमुन ने बताया, "वह बच्चों के लिए किश्तियाँ, मिट्टी की गाड़ियाँ और फिरकियाँ बनाते थे।" अमन ने कहा, "वह बच्चों से बहुत प्यार करते थे। वह बहुत अच्छे थे।" शाहीन ने कहा, "वे बच्चों के लिए खिलौने बनाते थे।" इमरान ने बताया, "रमजान मियाँ बच्चों के शौक़ पूरे करने के लिए खिलौने, फिरकियाँ और गाड़ियाँ बनाते थे।" उमर ने कहा, "रमजान मियाँ फक्कड़ आदमी थे। वे बच्चों के लिए कुछ-न-कुछ बनाते रहते थे।" अफ़साना ने बताया, "वे अजीब क़िस्म के आदमी थे, और बच्चों की तरह काम करते थे।" बच्चों से कहा गया, "आप लोगों ने जो बातें अभी-अभी बताई हैं उन्हें अपनी कॉपी पर लिख लो।"

यहाँ देखने में आया कि जो बच्चे बोलते हैं, वही अच्छे से लिख भी पाते हैं। इस कविता से बच्चों की अभिव्यक्ति क्षमता का अच्छा विकास हो रहा था। वे बोल रहे थे, और बात कर रहे थे। हर प्रश्न का उत्तर बच्चों ने अच्छे से बताया, बातचीत में शरीक हुए, और अपनी कॉपी पर लिखा। मुझे भी प्रश्न और चर्चा को दिशा देने में सहूलियत थी, क्योंकि मैंने इस बात की कुछ लिखित योजना पहले से बना ली थी कि कक्षा में काम कैसे करूँगा। इससे यह फ़ायदा होता है कि चर्चा के बिन्दु याद रहते हैं, और बातचीत भटकती नहीं है।

कविता शिक्षण : दूसरा दिन

अगले दिन इसी कविता पर बातचीत को आगे बढ़ाया गया। बोर्ड पर कविता पहले दिन से ही लिखी हुई थी। बच्चे दौड़े-दौड़े आए और कविता पढ़ने लगे। दूसरे दिन की बातचीत पहले



रमजान मियाँ

ओ मेरी जान मियाँ
ओ रमजान मियाँ

क्या खूब शौक पाले हैं
पाली हैं बिल्लियाँ
किरकिट का शौक गाड़ ली
आँगन में गिल्लियाँ

साइकिल का शौक फरमाया
हैंडिल पे घंटियाँ
चालिस की उम्र में भी
खेलते हो कंचियाँ

छुप-छुप के लोग आप पे
कसते हैं फब्तियाँ
किसकी मजाल सामने
उड़ाये खिल्लियाँ

काशी बनारस घूमे हो
देखी है दिल्लियाँ
किस प्यार से बनायी है
बच्चों की फिरकियाँ

कागज की किश्तियाँ
मिट्टी की गाड़ियाँ
ओ मेरी जान मियाँ
ओ रमजान मियाँ



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

दिन हुई चर्चा से शुरू की गई। मैंने बच्चों से कहा, “आप सबने बताया था कि कविता मस्त लग रही है। आज बताइए, यह कविता क्यों मस्त लग रही है?” बच्चों ने बताया, “ऐसा किसी कविता में नहीं आया जिसमें कोई बूढ़ा कंचे खेलता हो, बिल्लियाँ पालता हो, क्रिकेट खेलता हो।” कुछ ने कहा, “रमजान मियाँ अच्छे आदमी होंगे।” मैंने फिर पूछा, “कल आप लोग कह रहे थे कि रमजान मियाँ की फ़ुल मौज थी। यह बताओ, रमजान मियाँ की फ़ुल मौज कैसे थी?” एक बच्चे ने बताया, “रमजान मियाँ बच्चों की तरह रहते थे, इसलिए उनकी फ़ुल मौज थी।” दूसरे ने बताया, “वे अच्छे इंसान होंगे तभी तो बच्चों के लिए खिलौने बनाते थे।” तीसरे ने कहा, “खिलौने बेच भी लेते होंगे। इससे उनका ख़र्च चल जाता होगा।” अब अगला प्रश्न पूछा गया, “रमजान मियाँ के बारे में लोग छुप-छुप कर फब्तियाँ क्यों कसते होंगे?” इसपर बच्चों ने जो उत्तर दिए, वह इस तरह से हैं–

“क्योंकि लोग उनसे डरते होंगे।”

“चालीस की उम्र में कंचे खेलते थे।”

“ताकि वे बुरा न मानें।”

“ताकि वे पीटने न लगें।”

“वे एक अलग तरह के इंसान थे। लोग उनसे जलते होंगे।”

“ताकि वे दुखी न हो जाएँ।”

“लोग डरते होंगे कि कहीं लड़ाई न हो जाए।”

बच्चों द्वारा मौखिक रूप से बताई गई बातों को व्हाइट बोर्ड पर लिखा गया। अब बच्चों से कहा गया कि जो बातें तुम्हें सबसे अधिक सही लग रही हैं, उन्हें अपनी कॉपी पर लिख लो। कुछ और समझ में आ रहा है तो उसे भी लिखो।

इसके बाद मैंने बच्चों से पूछा, “तुम्हारे क्या-क्या शौक़ हैं?” यह व्यक्तिगत प्रश्न पाकर जहाँ कुछ बच्चे अपने शौक़ बताने के लिए उत्सुक नज़र आए, वहीं कुछ मुस्कुराने लगे। वे अपने शौक़ बताने में संकोच कर रहे थे। यहाँ बच्चों को प्रोत्साहित किया। मैंने कहा, “सबके अपने-अपने शौक़ होते हैं। मेरे भी हैं और आपके भी होंगे। इसलिए अपने-अपने शौक़ बताओ।” यह बड़ा ही मज़ेदार अनुभव रहा। अन्ततः कक्षा के सभी 11 बच्चों ने अपने-अपने शौक़ बताए। एकाकी शौक़ वाला कोई भी बच्चा नहीं था। हर बच्चे के एक से अधिक शौक़ थे। शौक़ बताने की शुरुआत अनुज ने की। अनुज अभी अच्छे से किताब नहीं पढ़ पाता है, लेकिन बोलने में आगे रहता है। इसे खेती-बाड़ी का शौक़ है। मैं सोच भी नहीं सकता था कि कक्षा 5 के अनुज को गाय दुहने का भी शौक़ होगा। इसी तरह से आतिफ़ा का भी शौक़ अजब है। उसे चश्मा पहनने का शौक़ है, वह भी सफ़ेद रंग का। बच्चों ने जो शौक़ बताए, वह बड़े ही रोचक थे। कक्षा में किसी कविता की पढ़ाई के दौरान इस तरह से अपने शौक़ बताने का मौक़ा बच्चों को शायद पहली बार मिला था। इसमें उन्हें बड़ा मज़ा आया, और मुझे भी अपनी कक्षा

के विद्यार्थियों के शौक़ जानने का अवसर मिला। विद्यार्थियों ने जो शौक़ बताए, वे इस तरह से हैं–

छात्र : "गाय का दूध दुहने और भुट्टा खाने का।"

छात्रा : "शादी में जाने, अच्छे कपड़े पहनने, चोटी बनाने और साइकिल चलाने का।"

छात्र : "बकरी के बच्चे को दूध पिलाने और आग जलाने का।"

छात्रा : "कपड़ा सिलने, चूल्हा बनाने, बिक्री करने और पढ़ाई करने का।"

छात्रा : "खाना बनाने, सफ़ेद चश्मा पहनने और कढ़ाई करने का।"

छात्रा : "कपड़े पहनने, खाना बनाने और स्कूल आने का।"

छात्रा : "खाना बनाने, साइकिल चलाने, कंचे खेलने, घूमने और कढ़ाई करने का।"

छात्रा : "घर बनाने, चित्र बनाने, मेले में जाने और अच्छे कपड़े पहने का।"

छात्र : "गन्ना खाने, मेले में जाने, आइसक्रीम खाने, कंचे खेलने और घर बनाने का।"

छात्र : "घूमने, साइकिल चलाने, कंचे खेलने और खेत पर जाने का।"

छात्र : "खेत पर जाने का, खेत खोदने, तुरई या और कोई सब्ज़ी तोड़ने, साइकिल चलाने, स्कूल आने और घूमने का।"

फिर बच्चों से कहा गया कि तुम्हारे जो शौक़ हैं, उन्हें अपनी कॉपी पर लिखो। जो शौक़ बताने से छूट गए हैं, उन्हें भी लिखो। अपने शौक़ लिखने में बच्चों ने ख़ूब मज़ा लिया।

इसके बाद अगला प्रश्न बोर्ड पर लिखा गया, "तुम कहाँ-कहाँ घूमने गए हो?" इस प्रश्न को भी सभी से बारी-बारी पूछा गया। बच्चों ने ख़ुशी-ख़ुशी इस प्रश्न का उत्तर मौखिक रूप से दिया। बातचीत के बाद बच्चों ने अपने द्वारा घूमे गए स्थानों को अपनी अभ्यास पुस्तिका में लिखा।

इसके बाद मैंने बच्चों से कहा कि इस कविता में घण्टियाँ, बिल्लियाँ, गिल्लियाँ जैसे कुछ शब्द आए हैं, उन्हें ढूँढ़कर अपनी कॉपी पर लिखिए। कविता के अतिरिक्त इस तरह के और भी शब्द, जो तुम्हें याद आते हैं, अपनी-अपनी कॉपी पर लिखिए। दूसरे दिन यहीं तक बात हुई। यह कविता पढ़कर बच्चे ख़ुश थे, और मैं भी। रमजान मियाँ कविता पर पढ़ने-लिखने और बातचीत करने पर साथ-साथ काम किया जा रहा था और बच्चों को सोचने के अवसर दिए जा रहे थे, इसलिए लगा कि इस कविता पर एक दिन और काम करना होगा।

कविता शिक्षण : तीसरा दिन

तीसरे दिन बच्चों ने बारी-बारी से कविता पढ़ी, और मैंने भी पढ़कर सुनाई। तीसरे दिन तक कई बच्चों को कविता मौखिक तौर पर याद हो गई थी। इस दिन कक्षा में कुछ नए बच्चे उपस्थित हुए। नए बच्चों को ध्यान में रखते



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

हुए कुछ ऐसे प्रश्न दोहराए गए जिनपर पहले बातचीत की जा चुकी थी। मसलन, यह कविता किसके बारे में है; रमजान मियाँ के क्या-क्या शौक़ थे; वे कहाँ-कहाँ घूमने गए थे; तुम कहाँ-कहाँ घूमने गए हो; तुम्हारे क्या-क्या शौक़ हैं; आदि।

अब मैंने अगला प्रश्न पूछा, "इस कविता को पढ़ने के बाद इस तरह की कोई और कविता तुम्हें याद आ रही है तो सोचकर बताओ।" एक बच्चे ने बताया, "पढ़क्कू।" मैंने पूछा, "कक्षा 4 का पाठ 'पढ़क्कू की सूझ'?" वह बच्चा बोला, "हाँ-हाँ, वही।" और कई बच्चों ने भी हाँ में हाँ मिलाई। दूसरे ने बताया, "भीखूभाई।" इसपर एक अन्य बच्चे ने कहा, "कक्षा 4 के पाठ 'मुफ़्त ही मुफ़्त' वाले भीखूभाई।" बच्चे बोले, "हाँ-हाँ, भीखूभाई भी अजीब काम करते थे।" "रमजान मियाँ की तरह तुमने कोई आदमी देखा है?" मैंने पूछा। एक बच्चे ने बताया, "मुंशी।" उसके बताने पर कई बच्चे हाँ-हाँ करने लगे। इस बच्चे ने 'रमजान मियाँ' कैरेक्टर का मिलान बिलकुल सही किया, क्योंकि वास्तव में यह मुंशी अजीब आदमी था। एक थैला लेकर घूमता रहता था। बक्से, अलमारियाँ ठीक करता था। वह, पतला-सा मरियल आदमी था। कभी ख़रगोश पालता था, कभी कुत्ता-बिल्ली, तो कभी तोता। अजीब तरह से बना घूमता रहता था। अपने में मस्त रहता था। कभी-कभी अपने मामू के क़िस्से मुझे भी सुना जाता था। इस तरह रमजान मियाँ कविता का शिक्षण कार्य पूरा हुआ। बच्चों ने रमजान मियाँ की कहानी को अपने शब्दों में लिखा और चित्र भी बनाए।

निष्कर्ष

अच्छी कविताएँ बच्चों को अलग ही आनन्द देती हैं। ये बच्चों के भाषाई कौशल विकास में भी अहम भूमिका निभाती हैं। बच्चों के परिवेश की कविता होने के कारण बच्चे इस कविता में अच्छे से जुड़ पाए। शब्दार्थ, भावार्थ, अर्थ, आदि की बात करने की ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई। बातचीत में बच्चों की भागीदारी दर्शाती है कि बच्चों ने कविता को अच्छे से समझा। मौखिक भाषा का लिखित भाषा से सीधा सम्बन्ध है, और लेखन में मौखिक भाषा ही लिखित भाषा बन जाती है। इस कविता पर की गई बातचीत से बच्चे ख़ुद को अभिव्यक्त कर रहे हैं, वे अपने दिमाग़ से सोच रहे हैं। इस तरह से पाठ्यपुस्तक में दी गई कविताओं से इतर कविताओं से भी भाषाई कौशलों का विकास भली भाँति किया जा सकता है। सबसे ख़ास बात यह रही कि इस कविता में बच्चे अच्छे से जुड़े, और ख़ुश हुए। वे कविता को अपने परिवेश से जोड़ पाए। रमजान मियाँ उन्हें अपने आसपास के ही कोई जाने-पहचाने से व्यक्ति महसूस हुए।

धर्मपाल गंगवार राजकीय प्राथमिक विद्यालय हल्दीपचपेड़ा, खटीमा, ज़िला ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड में प्रधानाध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। वे पिछले 27 सालों से अध्यापन के पेशे से जुड़े हुए हैं। उनकी शैक्षिक मुद्दों, भाषा शिक्षण व बच्चों के लिए पुस्तकालय को लेकर गहरी रुचि रही है। इसको लेकर वे अपने स्कूल प्रयोग करते रहे हैं और सीखने-सिखाने का सक्रिय माहौल बना पाए हैं। इसके अलावा उनकी स्वयं की भी पढ़ने-लिखने में रुचि रही है, और नियमित रूप से पुस्तकें पढ़ते रहते हैं। वर्तमान में वे इस रुचि को अपने साथियों में भी एक समूह के माध्यम से विकसित करने के लिए प्रयासरत हैं।

सम्पर्क : dp09gangwar@gmail.com

पुस्तकालय से पत्रिका तक...

अरविंद कुमार सिंह

अपनी कक्षा के बच्चों की पढ़ने-लिखने की क्षमताओं को निखारने के लिए, उनमें पढ़ने-लिखने को लेकर आत्मविश्वास पैदा करने के लिए लेखक ने दीवार पत्रिका पर काम किया। इस पत्रिका पर काम की शुरुआत में वक़्त लगा, लेकिन धीरे-धीरे जो अपेक्षित था वह सबकुछ होने लगा। बच्चों ने पुस्तकालय जाना, किताबों को पढ़ना सीखा और धीरे-धीरे वे पत्रिका को एक रूप देने में भी कामयाब हुए। बच्चों ने न केवल यह जाना कि उन्हें रचनाएँ लिखनी हैं, बल्कि कुछ हद तक यह भी कि एक पत्रिका के प्रकाशन के लिए क्या-क्या तैयारियाँ करना होती हैं। -सं.

सन्दर्भ

इस माह हमने अपने विद्यालय की पहली दीवार पत्रिका *उड़ान* का प्रकाशन किया। यह दीवार पत्रिका 'दीपावली विशेषांक' के रूप में प्रकाशित हुई। इस पत्रिका हेतु विद्यार्थियों द्वारा बेहद सुन्दर लेख लिखे गए एवं चित्र बनाए गए। आगे हम दीवार पत्रिका के प्रकाशन में आने वाली चुनौतियों, इसके उद्‌देश्यों, इसकी तैयारी के विभिन्न भागों पर विस्तार से चर्चा करेंगे। हम जानेंगे, कैसे छोटे-छोटे बच्चों से इतने सुन्दर लेख लिखवाए जा सकते हैं।

दीवार पत्रिका से पहले

दीवार पत्रिका के बारे में बताने से पूर्व, मैं आपको आज से लगभग डेढ़ साल पीछे ले चलूँगा। आपको बताऊँगा कि कक्षा शिक्षण के दौरान आई एक समस्या, कैसे एक दीवार पत्रिका के रूप में समाधान बनकर उभरी।

भाषा शिक्षण के दौरान कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की कक्षा में सहभागिता का अवलोकन करने पर यह एक समस्या सामने आई कि विद्यार्थी कहानी / कविता / जीवनी को सुन तो लेते हैं, लेकिन जब उनसे उसके विषय में चर्चा करने के लिए कहा जाता है, वे बचते हैं। यहाँ तक कि छोटे-से-छोटे प्रश्नों का उत्तर देने से भी बचने के लिए, नज़र तक नहीं मिलाते कि कहीं सर मुझसे उत्तर न पूछ लें। इस कार्य में नगण्य सहभागिता के साथ ही अधिकांश बच्चे लिखने में रुचि नहीं लेते हैं। कुल मिलाकर, कक्षा शिक्षण उनके लिए बोझिल बनता जाता है, और वे धीरे-धीरे शैक्षणिक रूप से पिछड़ जाते हैं। एक कक्षा में विभिन्न अधिगम स्तर एवं रुचियों





वाले विद्यार्थी पढ़ते हैं। कक्षा शिक्षण के दौरान मैंने देखा है कि कुछ बच्चे पढ़ने में बहुत अच्छे नहीं होते, लेकिन चित्र बहुत सुन्दर बना लेते हैं। मैंने सभी को समाहित करते हुए कक्षा में भाषा शिक्षण को रुचिपूर्ण बनाने के लिए गतिविधियों के समूह का इस्तेमाल किया।

शुरुआत भाषा के किसी पाठ को कक्षा में अच्छे से पढ़कर सुनाने से की गई। इसके बाद उन्हें जो पढ़कर सुनाया गया है, उससे सम्बन्धित किसी घटना, पात्र, उससे सम्बन्धित घटना या किसी अन्य काल्पनिक घटना का स्वतंत्र चित्र बनाने का अवसर दिया गया। इसके साथ ही, उन्हें अपनी रुचि के अनुसार रंग भरने का मौक़ा भी दिया गया।

कक्षा में हुए कार्य का एक उदाहरण है 'क़िस्सा जूते का' कहानी पढ़ने का। कहानी इस प्रकार है :

मगरमच्छ बस झपकी लेने ही वाला था कि उसके सिर पर एक जूता आ टपका! "यह जूता किसका है?" वह चिढ़कर बोला। मगरमच्छ ने दिमाग़ लगाया।

"कहीं यह जूता मेंढक का तो नहीं!" "क्या यह तुम्हारा है, मेंढक?" मगरमच्छ ने ग़ुस्से में पूछा। "नहीं, मेरा पैर तो इस बड़े जूते के लिए बहुत छोटा है।" मेंढक झिझकते हुए बोला। "ऐसा है क्या!" यह कहकर मगरमच्छ वहाँ से चला गया।

अब उसने ज़रा और ध्यान से सोचा। "यह जूता ज़रूर शतुरमुर्ग का होगा!" मगरमच्छ ने शतुरमुर्ग को पुकारा, "यह रहा तुम्हारा जूता!" 'मगर मेरा पैर तो इस चौड़े जूते के लिए बहुत बड़ा है।" शतुरमुर्ग घबराकर बोला। "ऐसा है क्या? उफ़्फ़...!"

मगरमच्छ का ग़ुस्सा बढ़ता ही जा रहा था। "यह जूता ज़रूर किसी ख़रगोश का होगा!" "किसका है यह जूता?", मगरमच्छ ज़ोर से चिल्लाया। सभी ख़रगोश काँपते हुए स्वर में बोले, "नहीं-नहीं, हमारे पैर इस जूते के लिए बहुत लम्बे हैं। यह हमें कभी पूरा नहीं आएगा।"

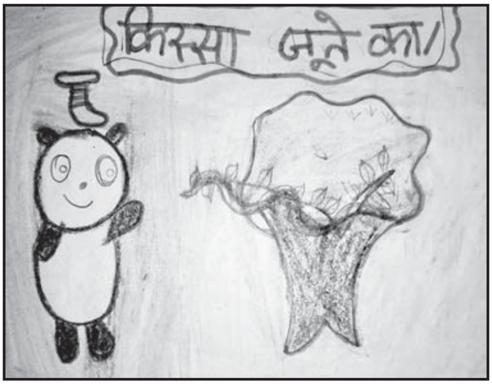
"यह जूता किसी का तो होगा!" ग़ुस्से से लाल-पीला मगरमच्छ वहाँ से चला गया। तभी, एक साँप वहाँ से रेंगता हुआ गुज़रा। मगरमच्छ फिर चिल्लाया, "साँप! यह जूता तुम्हारा है न?" साँप हकलाया, "म... म... म... मगर... मेरे तो पैर ही नहीं हैं।"

मगरमच्छ शर्मिन्दा होकर वहाँ से भाग उठा। वह समझ नहीं पा रहा था कि जूता आख़िर फेंका किसने। "बस एक बार पता लग जाए कि जूता किसने फेंका है, फिर बताता हूँ।" तिलमिलाया मगरमच्छ बोला। उसी समय एक शेर उसकी ओर लपका। "मैं एक जूते की तलाश में हूँ।" शेर ने कहा। "क्या तुमने मेरा जूता कहीं देखा है?" मगरमच्छ ने अपने कन्धे झटकाए। "मैंने तो आज सुबह से कोई जूता नहीं देखा।" अब वह इस जूते का आख़िर करे क्या? ख़ैर, मगरमच्छ ने सोचा, "किसी ने मुझपर फेंका था..." और वह गया जूता हवा में उड़ता हुआ। "आह..." भालू कराहा, "यह जूता कहाँ से आया?"

इस कहानी को पढ़कर सुनाने के उपरान्त हमने विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से चित्र बनाने को कहा, जो इस प्रकार हैं :–

बच्चों के चित्र





हम देख सकते हैं कि बच्चों ने विभिन्न जानवर, पेड़ों, जूता एवं जलीय जीवों के चित्र बनाए। वे सभी चीज़ें जो कहानी में थीं, काग़ज़ पर चित्र के रूप में आ गईं।

कहानी के बाद पहली गतिविधि में हम बच्चों को स्वतंत्र रूप से चित्र बनाने का मौक़ा देते हैं। उसके बाद उनको अपने बनाए गए चित्र पर चर्चा करने के लिए बारी–बारी से आमंत्रित किया जाता है। उनसे यह जानने का प्रयास किया जाता है कि यह चित्र पढ़े गए पाठ या उसके किसी पात्र से किस प्रकार जुड़ा है; उनके द्वारा बनाए गए चित्र में वह क्या बताना चाह रहे हैं; उन्होंने यह चित्र क्यों बनाया और बनाए गए चित्र के माध्यम से वह क्या कहना चाहते हैं; आदि।

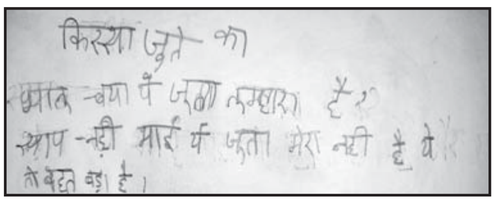
इसी प्रकार के प्रश्नों पर बोलने के लिए उसे कक्षा के सामने आमंत्रित किया जाता है। कभी–कभी पीयर टीम (जोड़े बनाकर) विद्यार्थियों को अभिनय / रोल प्ले करने का मौक़ा भी दिया जाता है।

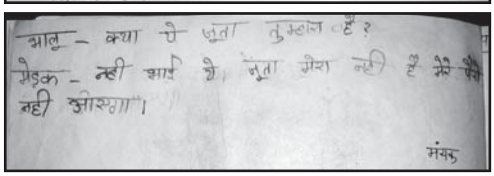
अन्तिम चरण में विद्यार्थियों ने जो भी चित्र बनाया है या जो अभिनय किया अथवा जो भी बोला है, उसको अपनी भाषा में लिखने के लिए बोला जाता है। विद्यार्थी अपनी क्षेत्रीय एवं मानक भाषा का समावेश करते हुए अपनी बात लिखते हैं।

बच्चों का लेखन

इसके बाद से मेरी कक्षा के विद्यार्थियों में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह आया है कि अब भाषा के किसी पाठ के ख़त्म होते ही वे गतिविधि के माध्यम से उसके कुछ हिस्से को प्रदर्शित करने के लिए उत्साहित रहते हैं।

मुझे लगता है कि चित्र बनाकर एवं बोलकर उनकी कल्पनाशीलता, तर्कशक्ति, आदि का विकास हो रहा है। अभिनय करने से उनका कक्षा में अपनी बात रखने का आत्मविश्वास बढ़ रहा है। विद्यार्थियों को लिखकर अपनी–अपनी बात क्षेत्रीय अथवा मानक भाषा में बताने के पर्याप्त अवसर मिल रहे हैं। भाषा शिक्षण के दौरान उनकी सहभागिता बढ़ रही है।





यह काम लम्बे समय तक करने के उपरान्त बच्चे नि:संकोच अपनी बात रखने लगे। बच्चों को नित-नई गतिविधि करने के लिए कहानी की आवश्यकता पड़ती थी, और कहानी के लिए पुस्तक व पुस्तक के लिए पुस्तकालय की। कहानी और कविता पढ़ना उनके लिए रुचिपूर्ण कार्य हो गया। कक्षा शिक्षण के दौरान पुस्तकालय का प्रयोग विद्यार्थी समान्तर रूप से करने लगे, क्योंकि लम्बे समय से वो कहानियाँ पढ़ रहे थे। अब समय था, उनकी अभिव्यक्ति को लेखन विधा के माध्यम से अगले चरण में ले जाने का।

इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए हम सबने (बच्चों एवं मैंने) निर्णय लिया कि अब हम अपने लेखों को किसी विशेष शीर्षक-आधारित लिखेंगे। इस प्रकार, हमारी पत्रिका *उड़ान* का उदय हुआ। इस दीवार पत्रिका का एक मुख्य उद्‌देश्य था, बच्चों की रचनात्मकता के लिए एक स्वतंत्र मंच प्रदान करना। दीवार पत्रिका के दौरान बच्चों को समूह में कार्य करने के अवसर प्राप्त होते हैं, और यह उनको मौलिक अभिव्यक्ति करने के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। सभी बच्चों को अपने लेखन कौशल का प्रदर्शन करने एवं स्वतंत्र रूप से चित्र बनाने का मौक़ा मिलता है।

पत्रिका का नामांकन

किसी भी पत्रिका को बनाने से पूर्व उसका नाम रखा जाता है। यह भी बड़ी मज़ेदार प्रक्रिया रही। बहुत-से नाम बोले गए। लगभग हर बच्चे ने कोई-न-कोई नाम सुझाया। इस दौरान, पतंग, संसार, आसमान, आकाश, जगत, ‘उड़ान’, चिड़िया, तारे, समुद्र, सूरज, सूरजमुखी, चाँद, आदि नाम सुझाए गए। विद्यार्थियों द्वारा सुझाए गए नामों पर विस्तार से चर्चा की गई। चर्चा के दौरान, विद्यार्थी ऐसा कोई नाम रखना चाहते थे जिसका दायरा बड़ा हो, अर्थात जिसकी कोई सीमा न हो। एक लेखक के सोचने की कोई सीमा नहीं होती है। पत्रिका में लिखे लेख बच्चों की कल्पनाओं की ‘उड़ान’ हैं, इसलिए पत्रिका का नाम उड़ान रखने पर सहमति बनी।

हैडर का निर्माण

अगला क़दम था पत्रिका के लिए हैडर बनाना, जो आकर्षक हो और प्रभाव छोड़े। हर पत्रिका के नाम के साथ हैडर जुड़ा होता है, जो उसकी पहचान बनता है। अतः *उड़ान* के लिए भी हैडर का निर्माण किया गया। इस पत्रिका का हैडर है– ‘उड़ान : बच्चों की दीवार पत्रिका’। हैडर छोटे रूप में इस पत्रिका का मूल भाव व्यक्त करता है।

विषय निर्धारण

पत्रिका में लेख किस विषय पर लिखे जाएँगे, यह सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। विषय ऐसा होना चाहिए जो बच्चों की समझ में आसानी से आ जाए। हमारी पत्रिका का निर्माण हमने दीपावली से पूर्व वाले माह में किया था, सो हमने पत्रिका का विषय ‘दीपावली’ रखा, और दीवार पत्रिका ‘दीपावली विशेषांक’ के रूप में प्रकाशित की गई। दीपावली एक ऐसा विषय था जिसके बारे में सभी जानते हैं। चूँकि बच्चों की पुरानी यादें भी इससे जुड़ी हैं, इसलिए उन्हें अपनी बात लिखने में आसानी रही, और अधिक-से-अधिक बच्चों ने बढ़-चढ़कर लिखा।



एफ़एलएन कार्यक्रम के तहत मुझे भी *बॉस, कभी भी कहीं भी* और पाठ्यपुस्तक *वाटिका, मैं ए टी एम हूँ,* आदि आत्मकथाएँ पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। सभी विद्यार्थियों को आत्मकथा लेखन विधा पर काम करने का अवसर प्राप्त हो, इसलिए दूसरा अंक 'आत्मकथा विशेषांक' के रूप में प्रकाशित किया गया।



इसके अलावा, कुछ अन्य विषय भी लिए जा सकते हैं। यथा–

1. कहानी पर चर्चा से;
2. आसपास के परिवेश से, जैसे– त्योहार, पास-पड़ोस, बारात, आदि;
3. घटनाओं से, जैसे– बाढ़, भूकम्प, आदि;
4. विधाओं पर आधारित, जैसे– साक्षात्कार, पत्र लेखन, यात्रा वृत्तान्त, आत्मकथा, आदि;
5. किसी रचनाकार को केन्द्र में रखकर;
6. भाववाचक विषयों पर, जैसे– मदद, सीखना, खोज, आदि।

विषय निर्धारण के लिए विद्यार्थियों से भी चर्चा की जा सकती है, अथवा विद्यार्थियों को कई सारे टॉपिक देकर उनमें आम सहमति भी बना सकते हैं।

पत्रिका तैयार करने में विद्यार्थियों की अहम भूमिका होती है। वे ही पत्रिका में छपने वाली सामग्री लिखते हैं, और फिर लिखी गई रचनाओं व चित्रों को संकलित करते हैं। इसके बाद, वे प्राप्त रचनाओं एवं चित्रों को चार्ट पर चिपकाते हैं, और चार्ट की सजावट व किनारों पर आलेखन या डिज़ाइन बनाकर सुन्दर रूप देते हैं।

सम्पादकीय एवं सम्पादक मण्डल का गठन

अभी मैं ही सम्पादक की भूमिका निभा रहा हूँ। लेकिन अगले कुछ अंकों के प्रकाशन के उपरान्त छात्रों को सम्पादक की भूमिका दी जाएगी। कुछ छात्रों को सम्पादक मण्डल के सदस्यों के रूप में नामित किया जाएगा, जो लेखों और चित्रों को पत्रिका के लिए छाँटेंगे।

इसी प्रकार, छोटे-छोटे कार्यों को विभाजित कर सम्पादक मण्डल का भी गठन किया जाएगा, जो लेखों की छँटनी करने में मदद करेगा। अभी भी हमारी पत्रिका के लिए आए सभी चित्रों को छात्रों की मदद से ही चुना जाता है।

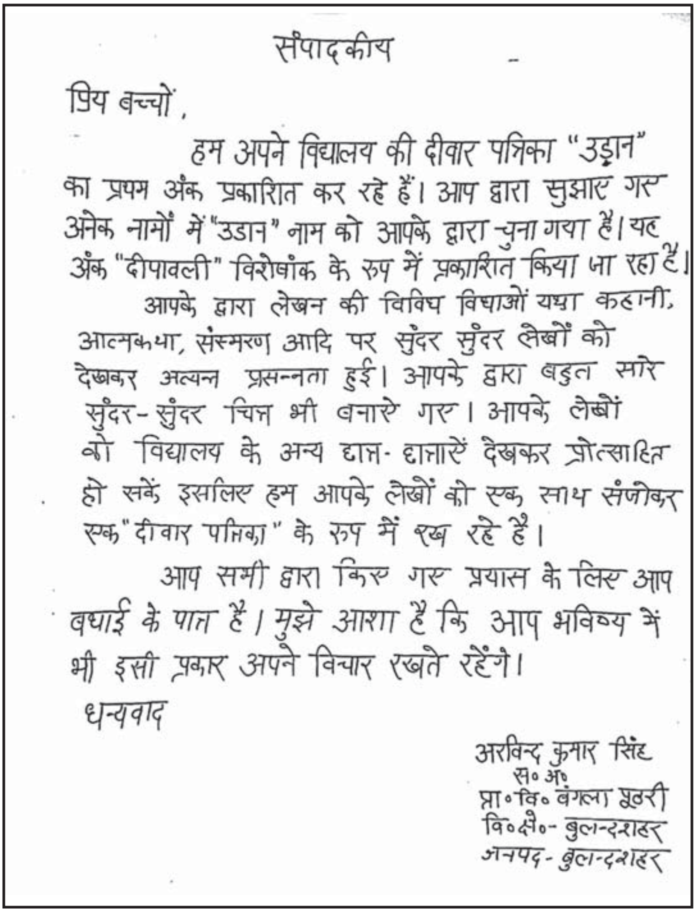
दीवार पत्रिका लगाते समय कुछ बातें, जिनपर सहमति बनी कि ये पत्रिका में होंगी, हैं :

प्रकाशन तिथि, वर्ष, अंक, आदि सूचनाएँ;

सम्पादक मण्डल का नाम, और सम्पादकीय पत्रिका के बाएँ कोने में होगी;

सभी रचनाएँ सुन्दर तरीक़े से सजाकर और बॉर्डर बनाकर लगाई जाएँगी;

पत्रिका का एक बॉर्डर होगा; और



संपादकीय

प्रिय बच्चों,

हम अपने विद्यालय की दीवार पत्रिका "उड़ान" का प्रथम अंक प्रकाशित कर रहे हैं। आप द्वारा सुझाए गए अनेक नामों में "उडान" नाम को आपके द्वारा चुना गया है। यह अंक "दीपावली" विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

आपके द्वारा लेखन की विविध विधाओं यथा कहानी, आत्मकथा, संस्मरण आदि पर सुंदर सुंदर लेखों को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आपके द्वारा बहुत सारे सुंदर-सुंदर चित्र भी बनाये गए। आपके लेखों को विद्यालय के अन्य छात्र-छात्राऐं देखकर प्रोत्साहित हो सकें इसलिए हम आपके लेखों को एक साथ संजोकर एक "दीवार पत्रिका" के रूप में रख रहे हैं।

आप सभी द्वारा किए गए प्रयास के लिए आप बधाई के पात्र हैं। मुझे आशा है कि आप भविष्य में भी इसी प्रकार अपने विचार रखते रहेंगे।

धन्यवाद

अरविन्द कुमार सिंह
स० अ०
प्रा० वि० बंगला पूठरी
वि० क्षे०- बुलन्दशहर
जनपद- बुलन्दशहर

पत्रिका का नाम सुन्दर अक्षरों में लिखा जाएगा।

पत्रिका में सभी बच्चों की भागीदारी है, फिर भी इसका बहुत-सा काम अभी मेरे ज़िम्मे ही है, धीरे-धीरे बच्चे यह भूमिका भी सँभाल लेंगे। अभी भी मैं जो करता हूँ, उसमें भी बच्चों की काफ़ी मदद मिलती रहती है। पत्रिका बन जाए, इसके लिए आवश्यक काम बच्चों के स्तर अनुसार विषय (टॉपिक) का चयन, उसके अनुसार उन्हें शैक्षणिक सामग्री उपलब्ध कराना, और चुने गए विषय पर कक्षा में चर्चा करना है। मैं उन्हें निरन्तर पुस्तकालय का प्रयोग करने और स्वतंत्र लेखन के लिए प्रेरित करता रहता हूँ। आख़िर में, मैं सम्पादक की भूमिका के निर्वाह के साथ वर्तनी अशुद्धियों पर भी कार्य करता हूँ।

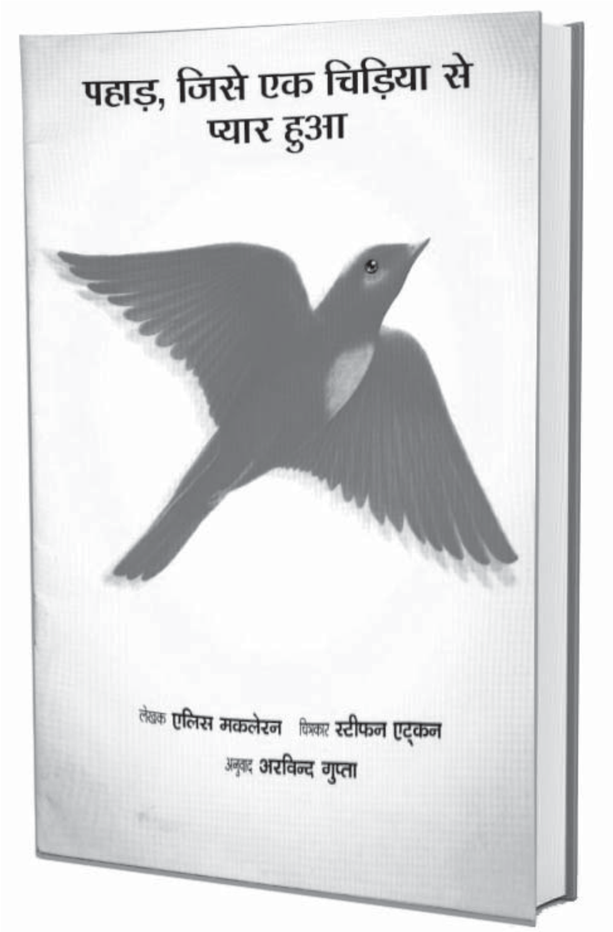
इस कार्य में कुछ सावधानियाँ भी रखनी होती हैं। एक तो यही, कि लिखते समय बच्चे एक दूसरे के लेख ज़्यादा न पढ़ें न ही लेखों के विचार साझा करें। किसी के लिखे पर बेहद नकारात्मक टिप्पणी न करें। यह भी कोशिश है कि धीरे-धीरे वर्तनी की अशुद्धि कम हों, व मौलिक ही लिखा जाए। यहाँ-वहाँ से देखकर न लिखें। पत्रिका में छापते समय इसका ध्यान रखने के साथ यह भी देखना होता है कि किसी भी लेख में जाने-अनजाने किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय पर या निजी टिप्पणी न चली जाए। मुझे लगता है, इस पूरे प्रयास से मेरी भाषा की कक्षा का माहौल बदला है, और बच्चों की लेखन क्षमता व आत्मविश्वास में काफ़ी विकास हुआ है।

अरविंद कुमार सिंह उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित, प्राथमिक विद्यालय बंगला पूठरी, ज़िला बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश में विगत 7 वर्षों से सहायक अध्यापक के पद पर कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : arv.kiet2011@gmail.com

पहाड़, जिसे एक चिड़िया से प्यार हुआ

प्रभात



पहाड़, जिसे एक चिड़िया से प्यार हुआ

लेखक : एलिस मकलेरन

प्रकाशक : तूलिका प्रकाशन

एलिस मकलेरन द्वारा लिखित और अरविन्द गुप्ता द्वारा हिन्दी में अनूदित *पहाड़, जिसे चिड़िया से प्यार हुआ* कहानी की पहली ही पंक्ति से दो पैराग्राफ़ तक पहाड़ के अभावों का चित्र खींचा गया है। इसे पढ़ते हुए पंक्ति-दर-पंक्ति यह महसूस होता है कि ये पहाड़ की नैसर्गिक इच्छाएँ हैं जो काश किसी तरह पूरी हो सकतीं! पहाड़ फ़िलहाल दूसरों के बिना है जोकि वह होना नहीं चाहता है। वह उससे दूर हो गए अपने और आसपास के साथ रहना चाहता है। वह उस सबको अपने दिल में जगह देना चाहता है।

सूखे, पथरीले पहाड़ की इस तड़प को व्यक्त करने के लिए जो भाषा बुनी गई है, वह यादों और आकांक्षाओं की ओस-भीगी नर्म हरी घास की पत्तियों से बुनी गई है। जैसे कि लेखिका को मालूम हो कि सूखे में प्राण लौटाने के लिए जल-भरी भाषा ही चाहिए।

सूर्य, चन्द्रमा, तारों और बादलों की उपस्थिति ने उसके अकेलेपन को विराट बना दिया है। लेखिका लिखती हैं कि उस वीरान रेगिस्तान में देखने के लिए और कुछ था ही नहीं। जैसे उस 'और कुछ' के बिना सूर्य, चन्द्रमा, तारों और बादलों का होना न होना बराबर है। ख़ास मायने

नहीं रखता है। हम महसूस करते हैं कि जिनके अपने उनसे खो जाते हैं, सूर्य, चन्द्रमा, तारे और बादल भी उनके लिए खोए हुओं की तरह ही उपस्थित रहते हैं। जैसा कि सूरदास ने गोपियों के लिए कृष्ण के अभाव को लिखते हुए कहा था, "जेई जेई सुखद, दुखद अब तेई तेई।" यानी, उनके होने से जो-जो भी सुख देने वाला था, उनके न होने पर वह सब दुख देने वाले में बदल गया है।

कहते हैं, और ग्रहों पर जीवन नहीं है। पहाड़ किसी और ग्रह पर होता, तब शायद उसके दुख के कारण के लिए कोई जगह वहाँ नहीं होती। लेकिन चूँकि वह पृथ्वी का बाशिन्दा है, जहाँ जीवन है। पृथ्वी पर जीवन का होना और पहाड़ के जीवन में उस जीवन का अभाव होना ही उसके दुख का कारण है। पहाड़ कवि तो है नहीं जो यह लिखकर सह जाए कि–

'जो नहीं है,

उसका ग़म क्या?

वो नहीं है।'





लेकिन कवि शमशेर भी जब ऐसा कह रहे हैं, तब इस कहन में भी जो नहीं है उसी के लिए ग़म है, उसी के लिए रुदन है। ऐसा लिखकर तो वे नहीं के ग़म को सहने की ताक़त जुटाने की कोशिश कर रहे हैं।

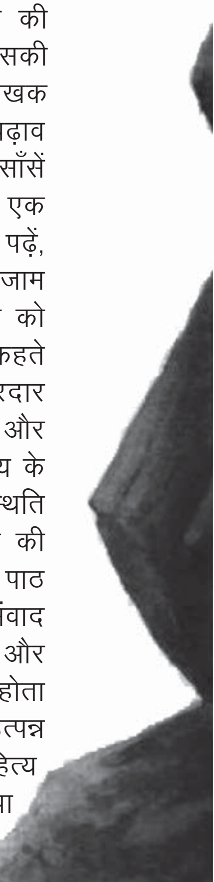
भारत की अँग्रेज़ी लेखिका अरुंधति राय अपने उपन्यास *गॉड ऑफ़ स्माल थिंग्स (मामूली चीज़ों का देवता)* में एक से अधिक बार एक बात कहती हैं। वह बात यह है कि एक पल में चीज़ें बदल जाती हैं। यह बात मुझे एक महाकाव्यात्मक सच्चाई की तरह लगती है। मैं सोचता हूँ, ऐसा ही तो होता है। कोई एक चीज़, कोई एक बात, किसी एक घटना ने हमारी ज़िन्दगी को पूरी तरह से बदल दिया होता है। एक दिशा में चल रही ज़िन्दगी किसी एक बात के कारण, किसी एक पल के कारण दूसरी दिशा में चलने लगती है, और अपनी पहले वाली दिशा से फिर कभी जाकर नहीं भी मिलती है। हम जानते हैं कि ज़िन्दगी छोटी होती है। उसके पास लौटने के लिए एक पल का भी समय नहीं होता है। सो पहाड़ के एकाकी जीवन में एक दिन चिड़िया आती है।



उसके आने पर पहाड़ को जो महसूस हुआ वह तो कविता ही है, उसका पाठ तो छोड़ ही दें, और कहानी में पहाड़ की पहली आवाज़ को महसूस करते हुए सुनें, "कौन हो तुम?" पहाड़ ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?" इस एक पल ने पहाड़ के जीवन को बदल दिया। आगे की कहानी इसी एक पल, इसी एक वाक्य का विस्तार है। या यूँ कहें कि यह वाक्य कहानी में वो स्थान है जहाँ से कहानी की अपनी भाषा का झरना फूट पड़ा है। आप देखिए, इस झरने में भाषा का कैसा पानी है, "मैं चिड़िया हूँ।" चिड़िया ने उत्तर दिया। "मेरा नाम ख़ुशी है। मैं दूर देश से आई हूँ, जहाँ...।" आप जानते ही हैं कि वहाँ क्या है, और चिड़िया की अपनी ज़िन्दगी की उधेड़बुनें क्या हैं।

पहाड़ और चिड़िया, दो पात्र, दो चरित्र हैं इस कहानी में। आप इन चरित्रों के बीच जो संवाद हो रहा है उसे देखिए। इन संवादों से पता चलती इनके हृदयों की उदारता, उज्ज्वलता और विराटता देखिए। निष्कम्प, निर्भार कहना और सुनना देखिए, इनके शब्दों का स्पन्दन और उससे उठते स्वतःस्फूर्त संगीत को सुनिए। पहाड़ कहता है, "क्या तुम्हारा यहाँ से जाना बिलकुल ज़रूरी है? क्या तुम यहाँ पर रह नहीं सकती हो?" ख़ुशी ने सिर हिलाया। "चिड़िएँ ज़िन्दा जीव होती हैं।" उसने समझाया। "उन्हें ज़िन्दा रहने के लिए भोजन और पानी चाहिए होता है। यहाँ पर खाने के लिए कुछ भी नहीं उगा है। न ही यहाँ कोई झरना है जिससे मैं पानी पी सकूँ।"

कहानी का यह संवाद क्या स्पष्ट करता है? कहानी का यह संवाद यह स्पष्ट करता है कि चिड़िया किसी परिस्थिति में आ तो गई है, लेकिन उसके रुकने की कोई सूरते-हाल यहाँ नहीं है। इसलिए वह जाएगी और पहाड़ की ज़िन्दगी फिर वैसी ही सूनी हो जाएगी। उसकी ज़िन्दगी में कुछ बदलने वाला नहीं है। लेखक अपनी कारीगरी से कहानी में ऐसे उतार-चढ़ाव पैदा करने की ऐसी कुव्वत रखता है कि साँसें थम जाएँ। कहानी के भीतर लगा यह एक ऐसा जाम है कि कहानी को आगे नहीं पढ़ें, तो हमें कभी पता नहीं चलेगा कि यह जाम आख़िर खुलेगा कैसे। इसलिए हम कहानी को आगे पढ़ते हैं। साहित्य में जिसे आकर्षण कहते हैं, वह यही है। साहित्य ख़ुद किसी किरदार की तरह अपने प्रेम में हमें खींच लेता है, और हम खिंचते चले जाते हैं। इस तरह साहित्य के चरित्र हमारे जीवन में अपनी जीवन्त उपस्थिति बना लेते हैं। हमारे पड़ोसियों और दोस्तों की तरह। शब्द साहित्य नहीं है, न ही कोरा पाठ साहित्य है। शब्द और पाठ के बीच के संवाद से जो बात बनती है, वह साहित्य है। शब्द और पाठ के आपसी संवाद से साहित्य जीवन्त होता है। चकमक के दो पत्थरों की रगड़ से उत्पन्न चिंगारी को देखने में जो सुख है, साहित्य पढ़ने में भी चिंगारी, यानी रोशनी, को पा लेने का सुख है। वरना कोई वजह नहीं कि हम साहित्य पढ़ें।







पहाड़ को तो चिड़िया की चाह है। लेकिन चिड़िया में भी वैसी चाह न हो, तो प्रेम की नैसर्गिक सृष्टि नहीं होगी। कवि या लेखक अपनी रचना के प्रजापति होते हैं, ऐसा हमारे संस्कृत साहित्य में कहा गया है–

अपारे काव्य संसारे, कविरेव प्रजापति।

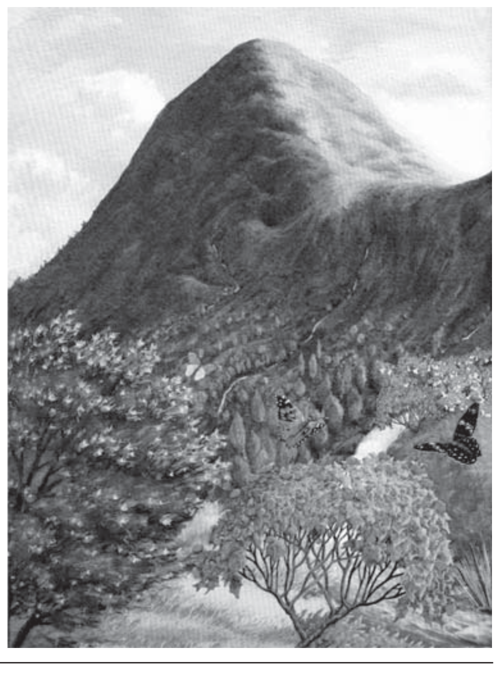
यथा वै रोचते विश्वं, तत्थेदं परिवर्तते।।

अपनी रचना की स्वाधीन सृष्टा होने के नाते लेखिका चिड़िया के पहाड़ से प्रेम के तर्क की सृष्टि करती हैं। चिड़िया कहती है, "मुझे दूर-दूर तक जाना होता है, और बीच-बीच में आराम लेने के लिए मैं अनेकों पहाड़ों पर रुकती हूँ। पर आज तक किसी पहाड़ ने मेरे आने-जाने की कोई परवाह नहीं की। इसलिए मैं तुम्हारे पास दुबारा अवश्य लौटना चाहती हूँ।" चिड़िया के मन में पहाड़ को लेकर प्रेम पैदा होने की बात को कहने के लिए इतना काफ़ी था, लेकिन चिड़िया के मन में प्रेम में होने वाली उधेड़बुनों की शुरुआत भी हो जाती है। प्रेम के पहले पल के बाद भावनाओं के स्तर पर चीज़ें तेज़ी से घटना शुरू हो जाती हैं। चिड़िया के इस संवाद में हम उसके स्वर में चिन्तित होने के भाव को पकड़ सकते हैं। जब वह बेकली से साथ यह कहती है, "लेकिन ऐसा मैं वसन्त में अपना घोंसला बनाने से पहले ही कर पाऊँगी।" हम महसूस कर सकते हैं उनके बीच क्या हो गया है। वही, जो किताब का शीर्षक है। उनकी और क्या चिन्ताएँ हैं, कहानी में आगे के संवाद उन चिन्ताओं में डूबे हुए हैं।

नन्ही कोमल चिड़िया की चिन्ता कितनी ठोस, कितनी वाज़िब, कितनी मुनासिब और कितनी विकट लगने लगती है, जब वह कहती है, "हाँ, एक बात और जिसे तुम्हें समझना चाहिए। पहाड़ हमेशा-हमेशा के लिए होते हैं, पर चिड़ियों के साथ ऐसा नहीं है। ...चिड़ियों की उम्र लम्बी नहीं होती।" कहानी में जिस तरह से और जहाँ यह संवाद आता है कि चिड़ियों की उम्र लम्बी नहीं होती, पहाड़ पर दुख का पहाड़ ही जैसे टूट जाता है। आगे वह जो कहता है उससे यही झलकता है कि जीवन में कैसी-कैसी विवशताएँ हैं, कैसी-कैसी निरुपायता।

"ख़ुशी पहाड़ की ओट में चुपचाप बैठी रही। फिर वो एक मधुर गाना गाने लगी – बिलकुल घण्टी की आवाज़ जैसा। पहाड़ के जीवन में यह पहला संगीत था।"

आगे जीवन नहीं है, लेकिन जब तक वह है उसका गान गाया जा सकता है। साहित्य जीवन से है, जीवन के लिए है, अपने पात्रों के



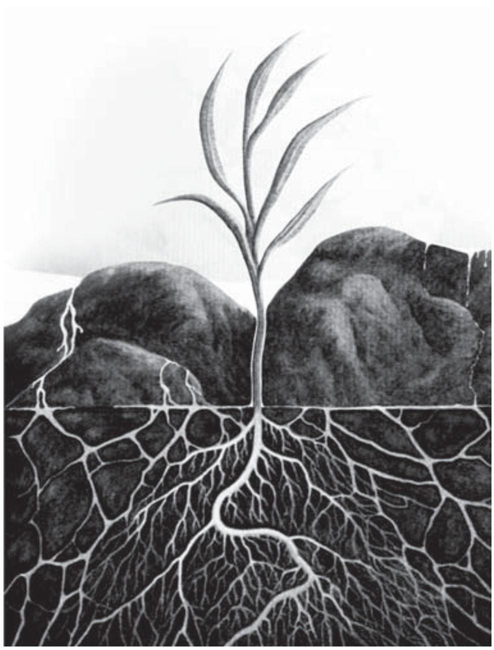


साथ-साथ उसे भी संघर्ष करना पड़ता है। संघर्ष करती हुई भाषा भी साहित्य का एक आकर्षण है। संघर्ष करते हुए साहित्य की हमारे दिल में एक अलग ही जगह होती है।

चिड़िया के उस संवाद की तो चर्चा ही क्या की जाए जहाँ कहानी अपने चरम को छू लेती है। चिड़िया कहती है, "क्योंकि मैं केवल कुछ ही सालों तक ज़िन्दा रहूँगी, इसलिए मैं अपनी एक बेटी का नाम ख़ुशी रखूँगी, और उसे तुम तक पहुँचने का रास्ता बताऊँगी। मेरी बेटी भी अपनी बेटी का नाम ख़ुशी रखेगी। हर ख़ुशी अपनी एक बेटी का नाम ख़ुशी रखेगी। कितने ही बरस क्यों न बीतें, तुम्हारा अभिनन्दन करने के लिए हमेशा-हमेशा एक नन्ही मित्र ज़रूर आएगी। वो तुम्हारे ऊपर उड़ेगी और तुम्हें मधुर गीत सुनाएगी।"

मुझे लगता है लेखिका ने यह कहानी लिखी, और कहानी में वह मोड़ आया जिसमें उसे कल्पना के सौन्दर्य की उड़ान भरने का यह अवसर मिला। और बतौर पाठक उस उड़ान के साथ उड़ने के सुख को हम भी पा सके।

कल्पना का सौन्दर्य, भावनाओं का सौन्दर्य, भाषा का सौन्दर्य, एक शब्द में कहें तो साहित्य का सौन्दर्य। साहित्य के सौन्दर्य का कौन-सा रूप है जो इस कहानी में हमें नहीं मिलता। जब चिड़िया पहाड़ को अलविदा कहकर एक साल के लिए चली जाती है। इतना कहने से भी कहानी आगे बढ़ ही जाती कि "अलविदा कहकर चिड़िया उड़ गई।" लेकिन लेखिका इस क्षण को समारोह की तरह रचते हुए लिखती हैं, "और वो उड़ गई। उसके पंख सूर्य की रोशनी में झिलमिला रहे थे। पहाड़ उसे लगातार टकटकी लगाए देखता रहा। फिर वो दूर, अन्तहीन शून्य में विलीन हो गई।" यह है भाषा का सौन्दर्य। पूरी कहानी की भाषा कुछ और होती और यह इतनी-सी बात इस तरह लिखी होती तो यही सौन्दर्य बेअसर हो जाता। सौन्दर्य की यह रचना कहानी से अलग-थलग और सायास नहीं है। कहानी की भाषा के बहते झरने में यह असल में वह जगह है जहाँ पानी पर सूर्य की चमक कुछ ज़्यादा पड़ रही है। भाषा की यह रोशनाई कहानी में शुरू से आख़िर तक फैली है। अच्छे साहित्य में यही होता है, और यह लेखक द्वारा तभी सम्भव होता है जब वह रचना के उस क्षण को पा ले, जहाँ सायासपन के लिए कोई गुंजाइश न बचे। रचना की भाषा ऐसे बहने लगे जैसे ज़मीन पर कोई नदी बहती है। इस तरह देखें तो साहित्य की प्रकृति भी, प्रकृति से कुछ भिन्न नहीं है। यानी, साहित्य की भी अपनी





इस पल की वास्तविकता तो यही है कि वह शून्य में विलीन हो गई है। पहाड़ के लिए यह वास्तविकता काफ़ी कठोर है, ज़ाहिर है चिड़िया के लिए भी।

हर वसन्त में एक चिड़िया पहाड़ के पास आती है और उसे अपना मधुर गीत सुनाती है। लेकिन पहाड़ के लिए इस गीत में कोई मधुरता नहीं, बल्कि उदासी है। वह जानता है कि चिड़िया लौट जाने के लिए आई है। पहाड़ के लिए इससे मुश्किल कोई बात नहीं। इससे अच्छा तो वह पहले ही था जब उसकी ज़िन्दगी में यह भावनाओं को रेतता हुआ इन्तज़ार न था। उसके दुख की गहराई की थाह क्या है, यह या तो पहाड़ जानता है या इस चरित्र को रचने वाली लेखिका। लेखिका ही हमें बताती हैं कि सौवें वसन्त पर "पहाड़ ने ख़ुशी को आसमान में विलीन होते हुए देखा, और अचानक उसका दिल टूट गया। सख़्त पत्थर फट गया पहाड़ के अन्तःकरण से, आँसुओं की धार झरने की तरह बहने लगी।" कहानी में यह एक और चरम है, एक और ऊँचाई।

कहते हैं, प्रेम में बड़ी शक्ति होती है। इस कहानी में प्रेम की शक्ति के सौन्दर्य को हम दो जगह उद्घाटित होते देखते हैं– एक तब जब ख़ुशी कहती है, "क्योंकि मैं केवल कुछ ही सालों तक ज़िन्दा रहूँगी, इसलिए मैं अपनी एक बेटी का नाम ख़ुशी रखूँगी, और उसे तुम तक पहुँचने का रास्ता बताऊँगी।" यह कहकर वह पहाड़ के लिए एक अमर आशा को रच देती है। और दूसरी जगह कहानी में यह है, जब हम सख़्त पत्थर के हृदय को फटता हुआ देखते हैं, और वहाँ से एक झरने को फूटते हुए देखते हैं। यह असल में प्रेम का अजर-अमर झरना है। प्रेम में बड़ी शक्ति होती है, इस कहानी

नैसर्गिकता होती है। साहित्य के उसी नैसर्गिक सौन्दर्य को हम उसमें निहारते हैं, इसीलिए किताब उठाकर पढ़ने लगते हैं।

संगीत में जैसे वाद्य यंत्रों से उठने वाली ध्वनियों का रस होता है, साहित्य में भी भाषा की अनुगूँजों का रस होता है। इस कहानी में यह जो कहा गया कि "फिर वो दूर, अन्तहीन शून्य में विलीन हो गई।" हम हमारी दृष्टि जहाँ तक पहुँचती है वहीं तक देख पाते हैं। उसके बाद हमारे लिए शून्य पसर जाता है। तो एक शून्य तो यह है जो कहानी ने इस वाक्य के ज़रिए हमें बताया। लेकिन कहानी में इस वाक्य से जो अनुगूँज पैदा हुई, इस वाक्य के कहे जाने पर जो ध्वनि वाक्य के पास लौटकर आई, उससे हमने जाना कि एक शून्य वह भी है जो चिड़िया के चले जाने से पहाड़ के मन में पसर गया है। हरेक पाठक इस शून्य में विलीन होने को अपनी तरह से देख सकता है कि चिड़िया के साथ-साथ शून्य में क्या विलीन हो गया है। प्रेम विलीन हो गया है, कि आशा विलीन हो गई है, कि क्या...। चिड़िया कहकर तो गई है कि अगले वसन्त में फिर आएगी, लेकिन क्या पता!

ने इस मुहावरे को मेरे लिए व्यंजित कर दिया है। कितने मुहावरे हैं जो तब तक केवल कोरे शब्द-भर होते हैं हमारे लिए, जब तक कि जीवन में उनकी कोई बानगी हमें न मिल जाए। साहित्य जीवन के मुहावरों को खोलने वाली बानगियों को खोज-खोजकर और चुन-चुनकर हमारे लिए लाता है।

किताब में एक चित्र है जिसमें चिड़िया पहाड़ के आँसुओं के बहते सैलाब को देख रही है। क्या इसकी कोई व्याख्या की जा सकती है, वह क्या देख रही है और क्या महसूस कर रही है? कहानी में यह वो पल है जो व्याख्या से परे है। इसकी व्याख्या की ज़रूरत तो महसूस होती है, लेकिन यह कुछ ऐसा है जिसकी व्याख्या हो नहीं सकती। क्या हमारी भाषा में अव्याख्येय जैसे शब्द का सृजन जीवन या साहित्य की ऐसी ही किसी परिस्थिति में हुआ होगा? कहानी ख़ुद ही इसकी व्याख्या करने की कोशिश-सी करती है जब उसमें यह पंक्ति आती है, "मैं अगले साल वापस आऊँगी।" ख़ुशी हल्के स्वर में कहकर उड़ गई। इससे पहले कहानी में कभी चिड़िया ने यह बात इतने हल्के स्वर में नहीं कही थी। इस बार उसने इस बात को हल्के स्वर में कहा क्योंकि उसके स्वर में पहाड़ के आँसुओं के सैलाब का भार था। जब हम घने रुदन से भरे होते हैं, तब बोलना ही पड़े तो हल्का-सा बोलते हैं बाक़ी चुपचाप अपना काम करते रहना चाहते हैं। जीवन के सघन अनुभवों के बिना साहित्य, साहित्य नहीं बन पाता है। दूसरे शब्दों में, साहित्य अपनी कहानी कहते-कहते कब हमारी कहानी कहने लगता है, हमसे बेहतर कौन जानता है, अगर हमने साहित्य के साथ कुछ समय बिताया है तो।

अपने महान उपन्यास *अन्ना करेनिना* की शुरुआत लियो टॉलस्टॉय ने इस पंक्ति से की है, "दुनिया के सभी सुखी परिवार एक ही तरह से सुखी होते हैं, लेकिन हर दुखी परिवार का दुख उसका अपना निजी और अलग होता है।" इस कहानी में भी यहीं तक दुख की गाथा है, आगे तो सुख के दिन हैं। हालाँकि उनका भी अपना प्रभाव है, अपना आनन्द है। उन सुखों के रस की निष्पत्ति इस वाक्य में आकर हो जाती है, "मैं खुशी हूँ।" उसने गाया, "और मैं यहाँ रहने आई हूँ।"

अब कहानी में कोई अभाव नहीं बचा। साहित्य का काम अभावों को भरना है। उसके बाद उसका काम ख़त्म हो जाता है। कोई कला आख़िर कितना काम करेगी। इस कहानी ने जितना किया, क्या वह काफ़ी नहीं है। कला का अपना अनुशासन, अपनी तहज़ीब होती है। क्या हम सूर्य से चाहेंगे कि वह रात में भी चमके!

प्रभात शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे हैं। दो कविता संग्रह *अपनों में नहीं रह पाने का गीत* साहित्य अकादमी से व *जीवन के दिन* राजकमल से प्रकाशित। बच्चों के लिए कविता, कहानियों की कई किताबें प्रकाशित। विभिन्न लोक भाषाओं में बच्चों के लिए ढेर सारी किताबों का पुनर्लेखन–सम्पादन। आप युवा कविता समय सम्मान–2012, सृजनात्मक साहित्य पुरस्कार-2010, और बिग लिटिल बुक अवॉर्ड–2019 से सम्मानित हो चुके हैं।

सम्पर्क : prabhaaat@gmail.com

चिन्तनशील शिक्षक लक्ष्य निर्धारित करता है, उसे हासिल करने के लिए रणनीति सोच पाता है

रश्मि पालीवाल से कमलेश चंद्र जोशी की बातचीत

कमलेश : हम शिक्षक और शिक्षक पेशेवर विकास के बारे में बातचीत करेंगे। *एनसीएफ़ 2005*, और *एनसीएफ़टीई 2009* के बाद चिन्तनशील शिक्षक मुद्दे पर विमर्श तेज़ हुआ। अच्छे शिक्षक के बारे में दस्तावेज़ों में अलग-अलग तरह की बातें लिखी गई हैं, लेकिन आम फ़ील्ड में या कम्युनिटी में सिर्फ़ ज़्यादा अंक दिलवाने और काम्पिटिशन में बच्चों को निकालने वाला अच्छा शिक्षक माना जाता है। इस सन्दर्भ में चिन्तनशील शिक्षक की अवधारणा पर कैसे सोचें?

रश्मि : इसे विरोधी ध्रुव की तरह न देखें। मतलब, एक तरफ़ सिर्फ़ अच्छे अंक मिल जाएँ, बच्चे परीक्षा में सफल हो जाएँ, उसकी चिन्ता में लगा हुआ शिक्षक, माने चिन्तित शिक्षक और चिन्तनशील शिक्षक, यह दो बिलकुल अलग चीज़ें नहीं हैं। मुझे लगता है कि बाहरी परिस्थितियाँ और हर तरह के दबाव, समाज के, प्रशासन के, या स्कूल प्रबन्धन के, ऐसी चीज़ नहीं हैं जिन्हें आसानी से दरकिनार कर सकते हैं। असल जीवन में, परिवार में, दोस्तों में, ख़ुद की संस्था में, सभी जगह एक बाहरी वस्तुनिष्ठ स्थिति होती है, जिसे हम पूरी तरह नियंत्रित नहीं कर सकते। बच्चों की चिन्ता है कि उनको अच्छे अंक मिलें, इसमें अवधारणाएँ याद कराने की बात भी आती है। यह सवाल कि बाहरी परिस्थितियों से कैसे जूझें, उनके दुष्प्रभावों से कैसे बचें, और कैसे अपना ख़ुद का रास्ता बनाएँ, एक वाज़िब चिन्ता है।

मेरे लिए एक चिन्तनशील शिक्षक का अर्थ यह है– "हर बच्चे के लिए मेरा एक लक्ष्य होता है जिसे पाने के लिए मैं कोई कर्म करना चाहती हूँ। मैं उस कर्म में संलग्न हूँ, और उसके जो परिणाम हैं, उनपर सोचती हूँ। देखती हूँ कि परिणाम सन्तोषजनक हैं कि नहीं, और यदि नहीं हैं, तब मैं उसके लिए और रास्ते तलाशने और जानकारी इकट्ठा करने की कोशिश करती हूँ ताकि लक्ष्य तक बेहतर तरीक़े से पहुँच सकूँ।"

जब मैं विद्यार्थियों के साथ इस प्रकार व्यवहार करती हूँ, मुझे लगता है, मैं एक चिन्तनशील शिक्षक के रूप में काम कर रही हूँ। उदाहरण के लिए, पाँचवीं कक्षा की एक बच्ची मेरे पास पढ़ने आती थी। वह काफ़ी चिन्तित थी कि उसकी स्कूली वर्कबुक में उसे चार अंकों का गुणा-भाग कराया जा रहा है। यह गुणा-भाग उससे बन नहीं रहा, और ग़लतियाँ होती हैं। वह चाहती थी कि मैं उसे सिखा दूँ। बच्ची को अभी 122 जैसे संख्यांक लिखना भी नहीं आता। ऐसे में उसके साथ मौखिक रूप से, मानसिक रूप से कोई भी कार्य करना सही नहीं था। जब उसे इतना भी नहीं आता है तब इतनी बड़ी संख्याओं का गुणा-भाग सिखाना बहुत बेमानी था। वह साफ़तौर पर सिर्फ़ स्कूल की परीक्षा को पास करने और बाहरी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए था।

इसमें मैंने एक द्वन्द्व पाया। सोचा, पहले इसकी पूरी बुनियादी अवधारणाओं को स्पष्ट करूँ फिर गुणा भाग तक लाऊँ। पर अगर मैं ऐसा करूँ, तब क्या बच्ची की अभिप्रेरणा; उसका इस वक़्त लक्ष्य; उसके दिमाग़ की चिन्ता; वह जो हासिल करना चाहती है; वह जो मदद माँग रही है; क्या वह देने की मेरी संवेदना और तैयारी

है? अभी वह मदद माँग रही है कि कल मेरी पिटाई होगी, मैं जलील होऊँगी, शर्मिन्दा होऊँगी, प्लीज़ मेरी मदद करो। उसका पूरा दिमाग़ उसमें लगा हुआ है। अब यदि मैं, उसके लिए तीली-बण्डल, पीले वाले स्थानीय मान कार्ड, आदि लाऊँगी, तब वह उसमें नहीं जुड़ पाएगी। चिन्तनशील शिक्षक के रूप में मेरा फ़र्ज़ यह सोचना बनता है कि इस वक़्त किसका क्या लक्ष्य है; सीखने वाले और मेरे क्या लक्ष्य हैं; और इनमें क्या रणनीति अपनानी चाहिए?

मेरे लिए एक चिन्तनशील शिक्षक का अर्थ यह है— "हर बच्चे के लिए मेरा एक लक्ष्य होता है जिसे पाने के लिए मैं कोई कर्म करना चाहती हूँ। मैं उस कर्म में संलग्न हूँ, और उसके जो परिणाम हैं, उनपर सोचती हूँ। देखती हूँ कि परिणाम सन्तोषजनक हैं कि नहीं, और यदि नहीं हैं, तब मैं उसके लिए और रास्ते तलाशने और जानकारी इकट्ठा करने की कोशिश करती हूँ ताकि लक्ष्य तक बेहतर तरीक़े से पहुँच सकूँ।"

यदि शिक्षक के पास एक तरह का ज्ञान है वह एक तरह की रणनीति अपनाएगा, और यदि उसके ज्ञान में इज़ाफ़ा हो, बदलाव आए, तभी उसकी रणनीति अलग बन सकती है। इसलिए शिक्षक के ज्ञान के मुद्‌दे को देखने की ज़रूरत है।

कमलेश : शिक्षक के ज्ञान से आपका क्या आशय है? कुछ उदाहरण दें। शिक्षक कहते हैं कि कोई नई विधि बताएँ। क्या शिक्षक के ज्ञान में यही शामिल है?

रश्मि : बात सिर्फ़ विधि की नहीं है। शिक्षक प्रशिक्षणों में अकसर एक की बजाय दूसरी विधि से शिक्षकों को वाक़िफ़ करा देते हैं। जब पाठ्यपुस्तकों में विधि और पाठ्यक्रम का स्तर बदला जाता है, तब शिक्षक के पास एक नई विधि और अलग पाठ्यक्रम पहुँच जाते हैं। अलग प्रकार के पाठ्यक्रम और विधि के बावजूद हमने देखा है कि शिक्षक कक्षा में किसी और चीज़ के आधार पर अपने काम को संचालित करता है। कई शोध भी यह दिखाते हैं कि शिक्षक कक्षा में पाठ्यपुस्तक में लिखी सामग्री, प्रशिक्षण में जो सिखाया गया था, आदि का उतना इस्तेमाल नहीं करते जितना अपने मन में सँजोए ज्ञान, छवियों और प्रतिबिम्बों का। अकेले कक्षा में बच्चों के सामने वे अपने अन्दर के सारे संसाधन जो संचित और गठित हो चुके हैं, उनसे ड्रॉ करते हैं। यह ज्ञान किन-किन चीज़ों के बारे में होता है? सबसे पहले तो यह कि बच्चे की रुचि किसके बारे में है। हो सकता है एक शिक्षक की बच्चों की रुचि को लेकर कुछ छवियाँ हों, या फिर उसे यही लगता हो कि बच्चे की रुचि का कोई रोल नहीं है। शिक्षा में मुझे जो पढ़ाना है वही पढ़ने की ज़रूरत है। इसी तरह से यह पहलू कि बच्चे की क्षमता और स्तर को लेकर उसका क्या ज्ञान है, और वह इसको कितनी तवज्जो देता है।

फिर यह बात कि वह क्या सिखाना चाहता है। यदि वह चार अंक का भाग सिखाना चाहता है, तब क्या उसको ऐसे भाग की विषयवस्तु का ज्ञान है। यह ज्ञान उसके पास होना चाहिए। साथ ही यह भी जानना कि चार अंक की संख्याओं का भाग कैसे सिखाएँ। भाग के तरीक़े के बारे में उसका ज्ञान क्या पुराना निर्मित ज्ञान है या वह उसके अपने अनुभव से बना है?

एनसीईआरटी की नई किताबों में भाग करने के बहुत अलग तरीक़े पेश किए गए हैं। एक स्कूल में काम करने के दौरान मैंने देखा कि शिक्षिका पुरानी विधि से भाग करना सिखा रही थीं। मुझे आश्चर्य हुआ कि वह क्यों एनसीईआरटी की किताब में दी विधि का इस्तेमाल नहीं कर रहीं, और पुरानी विधि से सिखा रही हैं। पूछने पर उन्होंने कहा कि उन्होंने किताब में विधि नहीं देखी, क्योंकि उन्हें पहले से मालूम है कि भाग करना क्या होता है। मैंने कहा, आपने प्रशिक्षण में यह चीज़ देखी ही होगी। उन्होंने कहा, प्रशिक्षण में

कुछ बताया गया था, पर उस सबकी क्या ज़रूरत है। उनकी समझ है कि ज़रूरत का ज्ञान उनके पास है, अत: बाक़ी वह बिलकुल नज़रन्दाज़ कर रही थीं। उनके मन में कोई दुविधा या चिन्ता नहीं थी। पाठ्यपुस्तक और प्रशिक्षण की बातों को वह न तो देख रही हैं न उसका हवाला दे रही हैं, क्योंकि उन्हें इनकी ज़रूरत नहीं लगती। यह उनकी बेरुख़ी नहीं है। अकसर हम इसे शिक्षिका का आलसीपन या उनकी अरुचि मानते हैं। यह अरुचि नहीं है, क्योंकि वह बेहद रुचि से, अपने तरीक़े से भाग सिखा रही थीं। दाएँ से ऐसा करो, फिर यह माइनस करो, फिर यहाँ शून्य डालो, यहाँ कट-पिट डालो, भाग सिखाने का यही तरीक़ा है। और यह उनके ज्ञान के साथ काम कर रहा है। वह किसी चीज़ की अवहेलना नहीं कर रहीं, अपने ज्ञान की अनुपालना कर रही हैं। हम यह नज़रन्दाज़ कर देते हैं कि शिक्षक अपने ज्ञान के इन तमाम स्रोतों का बेहद शिद्दत से उपयोग करते हैं।

इसी तरह, सीखने के चरण क्या होंगे; पहले क्या होगा; क्या निर्देश दिए जाएँगे; और बच्चे के साथ क्या प्रयास किया जाएगा; इसमें बच्चों का संज्ञान कैसे काम करता है; इसके बारे में उनका ज्ञान है। उन्हें मालूम है कि बच्चों के दिमाग़ में कोई बात कैसे उतारी जाती है, और सीखना क्या होता है। वह दिमाग़ में उतरना होता है, या कुछ और। माने, सीखने के बारे में उनका अपना ज्ञान है।

इसी तरह से सीखने में बच्चों की अभिप्रेरणा है या नहीं; इसको कितना महत्त्व देना है; और अभिप्रेरणा पैदा करने के तरीक़ों के बारे में उनका ज्ञान क्या है। यह ज्ञान कि तुलना करेंगे, तब अच्छे अंक लाएँगे। एक की तारीफ़ और एक को कमज़ोर कहने से अभिप्रेरणा बनती है। इससे वह कोशिश करता है। और अगर फिर भी वह कोशिश नहीं कर रहा, इसका मतलब यह है कि इसके घर में ऐसा माहौल नहीं है। कोई ध्यान नहीं देता दिमाग़ ही ख़राब है, वग़ैरह-वग़ैरह। माने, बच्चे का संज्ञान और बच्चे की अभिप्रेरणा कैसे संचालित होती है, इसके बारे में उनका अपना ज्ञान है। यह सिर्फ़ रूढ़ धारणाएँ नहीं हैं, जो बेतरतीब इकट्ठी हो गई हैं। यह सब चीज़ें एक बहुत सोचे-समझे और व्यवस्थित तरीक़े से उनके दिमाग़ में हैं, और काम करती हैं। साथ ही, पाँचवीं कक्षा के बच्चे को चार अंक की संख्या का भाग करना सिखाने का उद्देश्य; शिक्षा का लक्ष्य क्या है; पाठ्यक्रम का लक्ष्य क्या है; इस वक़्त के पाठ्यक्रम में यह क्यों है; आगे के पाठ्यक्रम में क्या है; और मैं आज नहीं सिखाऊँगी तो कल के पाठ्यक्रम में क्या दिक़्क़त आएगी; इस सबका उसे ज्ञान है। उसे पाठ्यक्रम का ज्ञान है। पाठ्यक्रम शिक्षा का कौन-सा लक्ष्य पूरा कर रहा है; जीवन में क्या काम आएगा; इस सबके बारे में उसका अपना ज्ञान है। यानी, इन सब बिन्दुओं पर उसकी एक सोची-समझी समझ है, जो उसको संचालित करती है। जब हम सिर्फ़ पाठ्यपुस्तक बदलकर उसके हाथ में थमा देते हैं, या किसी तीन दिन की कार्यशाला में कुछ अनुभव देकर उसे रोमांचित कर देते हैं, उसे उस समय मज़ा आ जाता है, और मज़ा लेकर वह घर चला जाता है। लेकिन जब वह कक्षा में होता है, इन सारे बिन्दुओं पर, जो उसने अपने अनुभव से सीखा है, उससे संयोजित ज्ञान ही उसको संचालित करता है। इसीलिए शिक्षक की ज्ञान की धारणाओं को बदलने में हम थोड़ा हताश महसूस करते हैं कि हमने इतना प्रयास किया, पर नहीं हुआ। हम उसको आसान आँकते हैं, यह हमारा ज्ञान है। शायद हम यह समझते हैं कि उसे इस जानकारी की कमी है कि भाग कैसे सिखाना है, और यह हमने उसे बता दिया। जैसे मुझे अभी पता नहीं है कि पीडीएफ़ फ़ाइल कैसे खोलूँ, और आपने मुझे तरीक़ा बताया और मैंने खोल ली। शिक्षा व शिक्षण को लेकर पूरी दृष्टि और संयोजित ज्ञान को सम्बोधित करने की ज़रूरत संचालित करती है।

कमलेश : हम कंस्ट्रक्टिव अप्रोच की बात करते हैं, पर इसमें और शिक्षक के ज्ञान में द्वन्द्व

है। हम कहते हैं कि ऐसे करो, लेकिन उसको पता है कि वैसे करना है। बदलाव कैसे हो?

रश्मि : चिन्तनशील शिक्षक की अवधारणा इसी वास्तविकता के सन्दर्भ में है कि शिक्षक अज्ञानी नहीं है। ऐसा नहीं कि हमने उसे ज्ञान दे दिया, और अब वह हमारा ज्ञान लेकर कार्य करेगा। जब हम शिक्षक के ज्ञान को स्वीकार करने लगेंगे, तब यह बात आएगी कि उसकी चिन्तनशील प्रक्रिया में क्या सहयोग करें। क्या हम जानते हैं कि वह क्या चिन्तन करता है; वह किस प्रकार का चिन्तन कर रहा है; और हम उसकी चिन्तन प्रक्रिया में कैसे सहभागी होकर उसे और समृद्ध व समर्थित कर सकते हैं? फिर यह हमें एक नई भूमिका देता है।

कमलेश : शिक्षा के क्षेत्र में काफ़ी सारी संस्थाएँ काम करती हैं। उनके अलग-अलग तरह के पैकेज कुछ तरीक़े बताते हैं कि इसको इस्तेमाल करो तो गणित आ जाएगा, या इससे अँग्रेज़ी आ जाएगी। इनमें यह बात नहीं होती कि शिक्षक इस बारे में क्या विचार कर रहे हैं, तब शिक्षक को चिन्तनशील बनाने की प्रक्रिया को कैसे समृद्ध किया जाए? दूसरा हम स्कूलों में जाते हैं, वहाँ कैसे काम करें? एनसीईआरटी की किताबों को आए हुए 12-15 साल तो हो ही गए होंगे, लेकिन उनके सही से इस्तेमाल को लेकर आज भी सन्देह है। दो-तीन दिन में प्रशिक्षित कर दें, ऐसा नहीं है। काफ़ी लम्बा और सोच-विचार वाला काम है, इसे कैसे करना चाहिए?

शिक्षक कक्षा में पाठ्यपुस्तक में लिखी सामग्री, प्रशिक्षण में जो सिखाया गया था, आदि का उतना इस्तेमाल नहीं करते जितना अपने मन में सँजोए ज्ञान, छवियों और प्रतिबिम्बों का।

रश्मि : इस सवाल का जवाब आप ज़्यादा अच्छे से दे सकते हैं। आप इस पूरे प्रयास में भिड़े हुए हैं। आपका सृजन समूह शिक्षकों का मंच है। इसमें आपने इस सवाल का कोई जवाब ज़रूर पाया होगा। मैं आपके नोटिस और साझा किए शिक्षकों की डायरी के पन्ने पढ़ती हूँ। इनमें इन बातों का जवाब निकलता है। इस पूरी सृजन, प्रक्रिया की, कल्पना करते हुए मैं सोचती हूँ कि हम इसे एक सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया के रूप में देखें, सिर्फ़ शिक्षा में नवाचार की प्रक्रिया या किसी चीज़ के क्रियान्वयन के रूप में नहीं। और, निश्चित रूप से, यह व्यवस्था में बदलाव भी नहीं है क्योंकि व्यवस्था पहले से बनी हुई है, और उसको हम बहुत ज़्यादा बदल नहीं पा रहे हैं। बदल भी नहीं सकते हैं क्योंकि उसकी बहुत तरह की जवाबदारी पूरी करनी होती है। माने, यह व्यवस्थागत बदलाव नहीं है। बल्कि यह सांस्कृतिक विकास का एक सिलसिला है। इसमें शिक्षक किसी सरकारी आदेश की वजह से नहीं, बल्कि अपनी स्वेच्छा, अपनी रुचि से एक प्रक्रिया में जुड़ते हैं। वह अपने जैसे विचार, रुचि और अभिप्रेरणा रखने वाले दूसरे शिक्षक साथियों या शिक्षा में लगे हुए कार्यकर्ताओं के एक समूह का हिस्सा बन जाते हैं। वे साथ में पढ़ते हैं, चर्चा करते हैं, नए तरीक़ों को देखते हैं, अपने अनुभव सुनाते हैं, और दूसरों के अनुभव सुनते हैं। एक तरह का सामूहिक सम्प्रदाय गठित होने लगता है। मुख्य बात यह है कि इसमें सब बराबर हैं, सब स्वतंत्र हैं, कितना भाग लेना है, कैसे भाग लेना है, कब आना है, कब नहीं, यह सब उनकी इच्छा, सुविधा और तैयारी पर है। यह भागीदारी का एक बहुत अलग सिलसिला है, जो व्यवस्था के अन्दर नहीं हो पाता। व्यवस्था में उनकी जवाबदारियाँ हैं, वह किसी और के मातहत हैं। व्यवस्था के अनुशासन, उसकी अपेक्षा को पूरा करना उनकी ज़िम्मेदारी है। ऐसे में, जहाँ वह ग़ैर-बराबरी पर हैं, उसकी बात अलग हो जाती है।

अपने आज़ाद देश का प्रशासन, ज़्यादा बराबरी के साथ कैसे काम करें, यह प्रश्न आज भी है। माने, बराबरी बिलकुल नहीं दिखती, और

शिक्षकों के काम की जगह पायदान में सबसे नीचे है। इसलिए यह समूह होना महत्त्वपूर्ण है। यहाँ आज़ादी है, और सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सदस्य एक व्यक्तिगत जुड़ाव, भावनात्मक स्तर पर एक समर्थन, एक पोषण महसूस करते हैं। यह भावनात्मक समर्थन आपको व्यवस्था के अन्दर, अपने स्कूल के अन्दर, प्रशासन के अन्दर महसूस नहीं होता, जोकि दरअसल होना चाहिए।

किसी सामूहिक लक्ष्य के लिए हम मिलकर और मन से कोशिश करें, यह भाव तब तक नहीं बन पाता जब तक कि स्कूल स्तर पर, स्कूल लीडरशिप का कोई उद्‌देश्य, प्रेरणा न हो। यह न होने पर शिक्षक का अपने विकास के बारे में बहुत आगे बढ़ पाना काफ़ी नामुमकिन काम हो जाता है। हम कैसे इस गाँठ को तोड़ें। सबको अभिप्रेरित करके साथ में कुछ हासिल करने के लिए प्रयासरत होना ज़रूरी है। नई-नई पाठ्‌यपुस्तकें बन गईं, नए तरीक़े आ गए, इतनी सामग्रियाँ देश में शिक्षकों के बीच पहुँचाई जाती हैं, लेकिन वह इसका उपयोग करने के लिए कैसे प्रयास करेंगे! वह प्रयास इस भावनात्मक जुड़ाव के साथ एक लक्ष्य की साझेदारी, बराबरी, स्वतंत्रता जैसी भावनाओं और प्रक्रियाओं के साथ ही सुगम हो सकता है। आपने कहा था कि शिक्षक का अपना रचनात्मक प्रयास, स्वायत्त तरीक़े से लिए गए उसके निर्णय और उसकी अपनी रचनात्मकता, ग़ायब लगती है। जैसे, किसी शिक्षिका ने कुछ कविताएँ इकट्‌ठी कीं। वह उन्हें आपके पास लेकर आए कि मैंने बच्चों के लिए लिखी अपनी कविताएँ इकट्‌ठी कर ली हैं, और मैं इनपर गतिविधियाँ बनाकर एक किताब निकालना चाहती हूँ। किसी ने बच्चों के किसी काम पर एक वीडियो बनाया है और वह उसको दिखाना चाहता है। यह सब शिक्षकों की स्वायत्तता का संकेत है कि वह अपने अन्दर की किसी अभिप्रेरणा से, अपने अन्दर के किसी ज्ञान और सोच से क्रियाशील हुए। उन्होंने कुछ किया, उसमें उनको सन्तोष मिला, और वह उसकी सराहना व स्वीकृति भी चाहते हैं क्योंकि इससे मनोबल बढ़ता है, और आप आगे के लिए प्रयास करते हैं। सोचने की बात है कि हम कितना तैयार हैं इसके लिए! क्या हमारे अन्दर यह छवि है कि हम कुछ चीज़ों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करवाएँ, या उन्होंने जो किया है उसपर आगे बढ़ें, क्योंकि मैंने देखा कि चाहे बच्चे हों या बड़े, वह दूसरों का सुनना, दूसरों का पढ़ना इतना नहीं चाहते जितना अपना सुनाना या बताना चाहते हैं। बच्चे भी और बड़े भी किसी और की बात को ध्यान से पढ़ें, सुनें, यह बहुत मुश्किल से होता है। जब होता है, बहुत अच्छी बात है। अगर सिर्फ़ दूसरों का बताया, लिखा, सुनाया हुआ, हम सुनें, समझें, और ऐसा दबाव हमपर हो, तब शायद हमारे अन्दर की जो एक स्वस्थ रचनात्मकता है वह अतृप्त रह जाती है। और उसमें फिर हमारी क्रियाशील होने की जो गाँठें हैं वह पूरी तरह से नहीं खुलतीं है।

कमलेश : शिक्षक की रचनात्मकता को ध्यान में रखते हुए हम उनके साथ कैसे काम करें, और कैसे उनकी आगे बढ़ने में मदद करें?

रश्मि : कुछ दोहरा लेते हैं। मेरे ख़्याल से चिन्तनशील शिक्षक का अपना एक लक्ष्य होना चाहिए, जिसके साथ वो ख़ुद आइडेंटिफ़ाई करता हो। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ कर्म करना, अपने लक्ष्य के बारे में सोचते हुए लक्ष्य और कर्म के फल पर विचार करना, कि क्या मिल रहा है, क्यों नहीं मिल पा रहा, या कितना मिल रहा है, कितना अच्छा मिला। जैसे, आपके मंच पर किसी शिक्षक का कहना था कि मेरी कक्षा के कमज़ोर बच्चों ने भी अच्छा प्रयास किया। उन्होंने अपना लक्ष्य देखा कि क्या हुआ, और उनको सन्तोष हुआ। कई कहते हैं अच्छा नहीं लगा, कुछ और करने की ज़रूरत है। माने, लक्ष्य, लक्ष्य के लिए काम, कर्म के प्रभाव पर चिन्तन, और उसके लिए फिर और नए संसाधन ढूँढ़ना, नई रणनीतियाँ ईजाद करके फिर से कर्म में संलग्न होना, उसके प्रभावों का आकलन

करना, यह लगातार चलने वाली क्रिया है।

जब शिक्षक आमतौर पर मिलते हैं, बात करते हैं। यदि उनका लक्ष्य है कि बच्चों को यह पढ़ना आ जाना चाहिए, तब उनकी बातचीत इस रूप में होती है कि इन बच्चों को कुछ आता ही नहीं है। वह स्कूल ही नहीं आते हैं, उनकी पढ़ने में रुचि ही नहीं है।

बच्चे का संज्ञान और बच्चे की अभिप्रेरणा कैसे संचालित होती है, इसके बारे में उनका अपना ज्ञान है। यह सिर्फ़ रूढ़ धारणाएँ नहीं हैं, जो बेतरतीब इकट्ठी हो गई हैं। यह सब चीज़ें एक बहुत सोचे-समझे और व्यवस्थित तरीक़े से उनके दिमाग़ में हैं, और काम भी करती हैं।

और सारे शिक्षक हाँ में हाँ मिलाते हुए वैसी ही बातें करने लगते हैं। इस प्रकार एक तरह से अपनी लाचारी, अपनी मजबूरी और अपनी अनहोनी निकाल दी। यह चिन्तनशील शिक्षक नहीं है, क्योंकि उसने अपने लक्ष्य को ज़्यादा प्रभावी बनाने के लिए अपने स्तर पर यह विचार नहीं किया कि वो कर्म में क्या बदलाव कर सकता है। इसके उलट, वह सोचता है कि वह कुछ कर ही नहीं सकता। जो था, जितना था उसने कर दिया, और अब आगे उसके हाथ की बात ही नहीं है, अब किसी और की ज़िम्मेदारी है, इसलिए यह चिन्तनशील शिक्षक नहीं हुआ।

कमलेश : हमारे मंच पर शिक्षक बहुत-सी सामग्री भेजते रहते हैं। क्या यह सामग्री भी संवाद का आधार बन सकती है; कैसे बन सकती है?

रश्मि : अगर सबके अनुभव और तरीक़े लगभग एक जैसे ही हैं, और उन्हीं की शेयरिंग हो रही हो, तब चिन्तनशीलता में वृद्धि नहीं होती, बल्कि वही एक रूढ़ि, परिपाटी पुख़्ता होती जाती है। अनुभवों और प्रयासों में विविधता, चिन्तनशीलता के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। विविधता आने से आगे के विकास का रास्ता खुलता है, क्योंकि अब दो बराबर के शिक्षक अपने वास्तविक अनुभवों को शिद्दत और उत्साह के साथ साझा कर रहे हैं। कोई उनसे करवा नहीं रहा है। माने, जब आपने मुझसे यह साझा किया, काफ़ी सम्भव है कि मैं कहीं यह सोचने लगूँ कि क्या मैं ऐसा करती हूँ; क्या मेरी कक्षा में भी मैंने ऐसा होता देखा है; कुछ-न-कुछ कीड़ा कुलबुलाता है मन के अन्दर। यही जब दूसरों के अनुभव हमसे अलग हैं वह सुनने-जानने से एक नयापन, एक नई दृष्टि मिलती है।

अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन जैसी संस्था का काम, सृजन समूह की प्रक्रिया में होने वाले प्रयास, विविधता की सम्भावनाओं को बढ़ाते हैं। मतलब, जब ऊपर से कोई कहे कि आपको कक्षा में तीली-बण्डल से सिखाना है, बच्चे को बोलने देना है, यह सही तरीक़ा है। किसी के द्वारा तरीक़ा बताया जाना अलग बात है, पर जब वह बात किसी साथी के अनुभव से सुनने को मिलती है, तब वह मेरे लिए अलग मायने रखती है। चाहे वह बात मुझे करनी नहीं है, मेरे ऊपर करने का कोई दबाव भी नहीं है। लेकिन आपका उत्साह और ख़ुशी देखकर जब संज्ञानात्मक स्तर पर ही नहीं बल्कि भावनात्मक स्तर पर भी मेरे अन्दर कुछ संचार होता है, और आपकी ख़ुशी मुझे कहीं छूती है। मैं सांस्कृतिक विकास की बात फिर से दोहरा दूँगी कि यह एक सांस्कृतिक आदान-प्रदान है। यह कुछ क्रियान्वयन का आदान-प्रदान नहीं है, यह व्यवस्था में परिवर्तन भी नहीं है।

किसी की ख़ुशी देखकर मुझे कुछ महसूस हुआ, इसमें कोई व्यवस्था नहीं बदली। वह वैसी की वैसी है। लेकिन मुझे कुछ फ़र्क़ पड़ा। एक उदाहरण देती हूँ, मैंने बहुत पहले मारग्रेट के टी की किताब *द ओपन क्लासरूम* पढ़ी। उसमें वह लिखती हैं कि जो बच्चे उनके सेंटर पर इकट्ठे होते थे उनको वह खेलने देती

थीं। इसी तरह की बात मैंने ए एस नील की *समरहिल* में भी पढ़ी कि बच्चे जितना चाहे खेल सकते थे। जहाँ चाहे दौड़ें, चाहे जो करें, उनपर कोई दबाव नहीं था। जब बच्चे खेलकर थक जाएँ, बहुत ऊब जाएँ, और आकर कहें कि हमें कुछ पढ़ा दो, तब मैं उनको पढ़ाता था। और वह बहुत प्रोडक्टिव इंटरेक्शन होता था। बच्चे काफ़ी तेज़ गति से उस बात में अपना दिमाग़ लगाते थे, सीखते थे। चाहे वह समय काल छोटा था। पूरे 2 घण्टे ज़बरदस्ती उनको अनुशासन में रखकर बैठाना जबकि उनका दिमाग़ और शरीर कहीं-कहीं भाग रहा है। उसकी बजाय उस थोड़े समय में लगाया गया ध्यान ज़्यादा सकारात्मक होता था। यह मैंने पढ़ लिया था, लेकिन तब तक मैंने ख़ुद बच्चों के साथ ऐसा काम नहीं किया था। अभी कुछ महीने पहले मेरे घर पर पढ़ने के लिए कुछ बच्चे आने लगे थे। वह मेरे बरामदे, आँगन की दीवार के ऊपर कूद-फाँद, पेड़ पर चढ़ना, साइकिल लेकर दौड़ना, झूले पर झूलना करते थे। मैं इतना घबराती थी कि उनको पढ़ना-लिखना कब सिखाऊँगी! मेरे अन्दर यह तनाव था। तब मुझे वह बात याद आई। साहित्य के स्तर पर कभी कुछ पढ़ा हो, आपको ऐसे मौक़े पर याद आता है। मार्गरेट के अनुभव में, नील के अनुभव में यह बात सही साबित हुई थी, तब शायद मेरे अनुभव में भी सत्य साबित हो। मैंने अपने ऊपर कंट्रोल करने की कोशिश की, मैं बच्चों को नियंत्रित न करूँ, उनकी ऊर्जा खेल में लग जाने दूँ, और इन्तज़ार करूँ कि थोड़ी देर बाद आकर वह यह काम करेंगे। और वास्तव में ऐसा हुआ, क्योंकि असल में वे सत्य अनुभव थे जो मैंने पढ़े थे।

इसलिए दूसरों के सत्य अनुभव पूरी भावनात्मक लगन के साथ सुनना कभी-न-कभी आपके काम आ जाता है। जब आप ऐसे मौक़े पर पहुँचते हो, और चिन्तन कर रहे होते हो कि मैं क्या करूँ, इस वक़्त अपना लक्ष्य कैसे प्राप्त करूँ, तब आपको दूसरों के अनुभव का जानना काम आ जाता है।

कमलेश : यह बात काफ़ी सुन्दर है। इस तरह का साहित्य, जिसमें सच्चे अनुभव हैं, शिक्षक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। हमारे समूह में भी लोग ऐसे अनुभव लिखते हैं, और यह काफ़ी मददगार होता है।

रश्मि : पर पता नहीं चलेगा कि कोई अनुभव कब उनके काम आया। वे तुरन्त उसका परिणाम दिखाएँ ऐसी अपेक्षा नहीं है, पर सतत पढ़ने और अपने अनुभव जगत को विस्तृत करने की सम्भावना बनी रहेगी।

कमलेश : शिक्षकों व स्कूलों के साथ काम करने का आपका लम्बा अनुभव है, इस बारे में बताएँ। यह भी कि आज के सन्दर्भ में इसे कैसे देखें?

रश्मि : हम शिक्षक विकास के सन्दर्भ में बात कर रहे हैं, उसके सन्दर्भ में ही मैं अपने काम को फ्रेम करने की कोशिश करूँ। एकलव्य की सफलता-असफलता अब पुरानी बातें हो गई हैं। वह पाठ्यक्रम सरकारी स्कूलों में सरकार की अनुमति से बहुत सालों तक चला, और 2002 में ख़त्म हुआ। उसके बाद हमने आदेश के माध्यम से शिक्षकों के साथ काम करना एक तरह से रोका, और शिक्षकों के मंच बनाने व उनके साथ अपना वार्तालाप जारी रखने का प्रयास किया। वह इतिहास की बात है। जब हमने पाठ्यक्रम बनाए थे, और सरकार से उनके लिए अनुमति माँगी थी, उसमें हम शिक्षक को और उसकी भूमिका को देख रहे थे। माने, हम ऐसे किसी भी शैक्षिक नवाचार, किसी भी तरह के नए बदलाव के लिए शिक्षक की केन्द्रीय भूमिका का किस रूप में विकास कर पाए, उसको प्रमाणित कर पाए, और क्या उसको फैलाया जा सकता है।

व्यवस्था के स्तर पर सबसे बड़ा सवाल होता है कि कोई भी अच्छी चीज़ शुरू हो गई, लेकिन यह सब जगह फैलेगी कैसे! पाठ्यक्रम में बदलाव, विज्ञान क्या है, विज्ञान शिक्षा कैसी होनी चाहिए, या समाज विज्ञान का स्वरूप क्या है, उसकी शिक्षा कैसी होनी चाहिए, इत्यादि

मुद्दों को लेकर हमारी पेशकश थी। यह शिक्षकों की पेशकश नहीं थी। लेकिन हमारी पेशकश को स्वीकार किया गया और इसके बाद से शिक्षक हमारे साथ बराबर के भागीदार थे। जो भी फ़ैसले किए गए, वह उनकी भागीदारी के साथ, उनके साथ वार्तालाप, बहस, चर्चा, प्रयोग करके किए गए। सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में हमने ओपन बुक परीक्षा ली थी, मुझे याद है। जैसे विज्ञान कार्यक्रम में ओपन बुक है, वैसे सामाजिक विज्ञान में भी हो सकता है क्या? सामाजिक विज्ञान में काफ़ी ज़्यादा जानकारियाँ किताब में दी हुई होती हैं। अगर ओपन बुक करेंगे, बच्चा वहीं से जानकारी टीपकर लिख देगा। विज्ञान में वह सम्भव नहीं था। यह एक दुविधा थी, एक प्रश्न भी था। इस प्रश्न का निदान शिक्षकों के साथ हो, इसके लिए गोष्ठी भी की गई। शिक्षा के उद्देश्य / लक्ष्य, समाज विज्ञान का स्वरूप, समाज विज्ञान की अवधारणा क्या है; समाज विज्ञान के मूलभूत कौशल क्या हैं; हमारा लक्ष्य क्या है; हम क्या जानकारियाँ सिखाना चाहते हैं; किन अवधारणाओं, किन कौशलों का विकास करना चाहते हैं; जितने बिन्दु शिक्षक के ज्ञान के सन्दर्भ में पहले गिनाए थे, लगभग सभी बिन्दुओं पर हमारे बीच बहस हुई। एक सामूहिक निर्णय हुआ कि इसमें भी ओपन बुक करके देखेंगे। इसी तरह से कई अध्याय थे। वह अध्याय रखे जाएँ या न रखे जाएँ, इसपर चर्चा हुई। भारत में जाति व्यवस्था के विकास पर हमारा अध्याय था। जाति व्यवस्था को लेकर एक प्रश्न था कि अपने ख़ुद के गाँव में आपको कैसा अनुभव होता है। किताब का ट्रायल एडिशन छप गया था। ट्रेनिंग में शिक्षकों ने कहा कि अमुक प्रश्न अपनी कक्षा में नहीं करेंगे। छपी हुई किताब लेकर कक्षा में बैठे थे, और शिक्षकों ने मना कर दिया कि वे कक्षा में ऐसे प्रश्न नहीं करेंगे। हमने काला पेन लेकर, छपी हुई सभी प्रतियों में उस प्रश्न को काला कर दिया। किसी एक चीज़ पर हमारी ही बात मानी जाए या यही ठीक है कि हमको पता है, इस रुख़ से काफ़ी बचा गया। हर एक बिन्दु पर शिक्षकों के साथ एक बराबर की भागीदारी के साथ काम करने की कोशिश की गई। सबसे महत्त्वपूर्ण था प्रश्न पत्र का निर्धारण कैसे होगा; प्रश्न पत्र में, प्रश्न किस आधार पर रखे जाएँगे; और बच्चों का आकलन किस प्रकार से होगा। यह महत्त्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि बाक़ी जगहों पर शिक्षक समूह बोर्ड के प्रश्न और मूल्यांकन तय करने में इतना स्वायत्त नहीं होता। लेकिन यहाँ पर शिक्षकों का वही समूह प्रश्न पत्र बना रहा है जिसको रूबरू ज्ञान है कि हमने क्या पढ़ाया। ऐसे प्रश्न कैसे रख दें जो हमने पढ़ाए ही नहीं! उनका मूल्यांकन करने का फ़ायदा नहीं क्योंकि हमने बच्चों को उसका अनुभव ही नहीं दिया। यह निर्णय शिक्षकों की स्वायत्तता के आधार पर लिया गया क्योंकि उनकी ज़िम्मेदारी है कि उन्होंने जो पढ़ाया उसी का मूल्यांकन करेंगे। आप कह सकते हैं कि शिक्षक बेईमानी कर सकते हैं, उनपर भरोसा कैसे किया जाए। कौन चेक करेगा कि शिक्षक भरोसे लायक़ है कि नहीं। शिक्षक आपस में एक दूसरे को चेक कर सकते हैं। जब 25 शिक्षक आपस में बैठकर यह तय कर रहे हैं कि यह हमने पढ़ाया कि नहीं; यह प्रश्न रखे जाएँ कि नहीं; और कोई कह दे कि हमने इस कुशलता पर काम ही नहीं किया, तब बाक़ी शिक्षक उसको डाँट देते थे कि कैसे नहीं किया तुमने। तुमने फलाने पाठ में वह नहीं किया, हमने किया था। चलो, कम वेट रख देंगे लेकिन प्रश्न तो रहेगा, क्योंकि बाक़ी सबने किया है। अगली बार तुम भी करना। यानी, शिक्षकों की

किसी सामूहिक लक्ष्य के लिए हम मिलकर और मन से कोशिश करें, यह भाव तब तक नहीं बन पाता जब तक कि स्कूल स्तर पर, स्कूल लीडरशिप का कोई उद्देश्य, प्रेरणा न हो। यह न होने पर शिक्षक का अपने विकास के बारे में बहुत आगे बढ़ पाना काफ़ी नामुमकिन काम हो जाता है।

आपस की चेकिंग, काउंटर चेकिंग, उससे चीज़ों का निर्धारण, यह हम क्रियान्वित कर पाए।

मैं समझती हूँ कि यही प्रयोग अगर अलग-अलग ज़िलों में वहाँ के शिक्षक समूह को ऐसी ही स्वायत्तता और जवाबदारी देकर किया जाता, तब हर क्षेत्र / ज़िले में शिक्षकों के ऐसे अनुभव वाले समूह बनते जो ज़िम्मेदारी अपने कन्धों पर लेने को तैयार होते। और ज़िम्मेदारी लेने का मतलब क्या है इसको भी करके सीख चुके होते, ख़ुद अपना ज्ञान बना चुके होते। फिर वह दूसरों को भी डाँट-डपटकर, समझा-बुझाकर करने के लिए प्रेरित करते। माने, यह सम्भावना कोई सातवें आसमान की बात नहीं है, यह इस नर्मदा किनारे हुई है। और एकलव्य के काम से शिक्षकों की समझदारी, ईमानदारी, उनकी पेशेवर कर्मठता लोगों के सामने आई है।

जब साथी शिक्षक सवाल करते है कि आपके स्कूल में टेस्ट इतनी कम कुशलताओं पर क्यों लिया जा रहा है? इसका कहीं-न-कहीं जवाब देना पड़ेगा। जवाब दो कि हम इतना ही कर पाए, हम इसलिए इतना ही कर पाए, और दूसरे संकुल के लोग अगर ज़्यादा कर पाए ईमानदारी से, तब उसको सुनकर हम भी समझें और कहें कि अगली बार अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश करेंगे।

कमलेश : स्कूल की व्यवस्थाएँ कैसी हैं; शिक्षक की क्या व्यस्तताएँ हैं; और उसके पास क्या काम हैं? यह सब भी सोचना होगा। सिर्फ़ यही नहीं है कि कर पाए या नहीं कर पाए।

रश्मि : पेपर डाइट से बनकर आएँ, या स्कूल के चार-पाँच शिक्षक मिलकर बनाएँ, व्यवस्था वही है, पर लक्ष्य अलग हो जाता है, प्रक्रिया अलग हो जाती है। आसपास के चार-पाँच स्कूलों के शिक्षक एक दूसरे के बारे में ज़्यादा गहरी जानकारी रखते हैं। वे एक दूसरे को कहीं ज़्यादा चेक कर पाएँगे, बनिस्बत ज़िला स्तर पर किसी अधिकारी के। शिक्षकों की ताक़त से पढ़ने-पढ़ाने के पूरे पैराडाइम को ज़मीन पर बदला जा सकता है, यह करके देखना और दिखाना हमारा मुख्य योगदान रहा। उसमें एक एनजीओ की अपनी भूमिका थी, लेकिन वह बहुत सीमित थी, क्योंकि उसके रोज़मर्रा के क्रियान्वयन का भार शिक्षकों पर ही था। व्यवस्था के स्तर पर यह एकमुश्त हर जगह लागू नहीं हो सकता। जैसे, मानो जंगल है, और आपको कहा कि यह खेती करने के तरीक़े का मॉडयूल है, बीज दे दिए अब वहाँ खेती फैलाओ। खेती फैल जाएगी क्या?

पहले ज़मीन तैयार करनी होगी। खरपतवार हटाना, जंगल साफ़ करना, बीज बोना, देखभाल करना, चप्पे-चप्पे पर करना पड़ेगा। जैसे एक जगह की इकोलॉजी बदलती है वैसे ही कोई एक सांस्कृतिक परिवर्तन है। जैसे खेती का फैलना पारिस्थितिकी परिवर्तन हुआ, वैसे ही सांस्कृतिक परिवर्तन है शिक्षा में नवाचार का होना। इसको हर जगह जड़ जमाना होगा, उगना होगा, और उसके लिए आपको हर जगह वह बीज रोपित करके उसको उगने देने का मौक़ा देना होगा। इसके लिए शिक्षकों के समूह बनाना, उनका स्वायत्त रूप से, रचनात्मक रूप से क्रियाशील होना, और जवाबदारी उठाना व जवाबदारी पाना कि आप यह कर सकते हैं, यह एक बेहद आवश्यक और वाज़िब क़दम है, कारगर है, ये होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में एकलव्य ने दिखाया है।

कमलेश : सरकार में डाइट, सीआरसी जैसी व्यवस्थाएँ पहले तो सूचनाओं के आदान-प्रदान के सेंटर की तरह ही बनकर रह गई थीं, अब और नीचे चली गईं। कई जगह सब सीआरसी वापस बुला लिए गए हैं। इसे आप कैसे देखती हैं?

रश्मि : इस आयाम पर बहुत कम काम किया गया है। कभी किसी ने थोड़ी कोशिश की होगी। जैसे हमने एक बार ब्लॉक लेवल प्रोजेक्ट में कोशिश की। इसको प्राथमिकता नहीं मिलती है। बच्चों का लर्निंग लेवल, उसकी समस्या के साथ जूझना, शिक्षकों की कैपेसिटी

बिल्डिंग, अपने कार्यकर्ताओं की कैपेसिटी बिल्डिंग, सारी चीज़ों के बाद जाकर यह आता है कि बीआरसी, सीआरसी के साथ भी काम किया जाए। जो थोड़ा प्रयास किया, वह यही इंगित करता है कि यह बेहद मुश्किल काम है, क्योंकि इन लोगों की रोज़ की दिनचर्या क्या होगी; यह कहाँ जाएँगे; किसमें कितना समय लगेगा; सबकुछ अनिश्चित होता है। एक बार हमने उनके साथ कोऑर्डिनेट करने का सोचा था कि हम अपने स्टाफ़ के लोगों को एक-एक सीआरसी के साथ पेअर-अप कर देंगे। हफ़्ते-भर वह जो कुछ भी करता है, हमारा ऑफ़िस का स्टाफ़ भी उनके साथ जाकर देखे, समझे, सीखे, और तब हम समीक्षा करेंगे कि उनके काम की परिस्थितियाँ क्या हैं; और उनमें क्या मदद व समर्थन किया जाए। ऐसा कुछ सम्भव ही नहीं हो पाया। आज का प्रोग्राम, कहाँ जाना है, यह सबकुछ इतना अनिश्चित होता था कि वह कभी हमारे साथ बात ही नहीं कर पाते थे। उनकी बैठक भी अनिश्चित थी। कब हो जाएगी, कितने घण्टे की होगी, साफ़ नहीं था। तो यह प्रयास कहीं आगे बढ़ नहीं पाया। इसलिए फिर शिक्षकों के साथ काम का ओवरऑल रास्ता ही अपनाने की कोशिश हुई। यह भी लगता है कि अगर इसमें कोई सम्भावना ही नहीं है, तब क्यों इसके पीछे पड़ें। और जो काम यह करते हैं अगर वह एक आवश्यक कार्य है, तब सरकार करवाएगी और यह करेंगे ही। इसलिए उसमें बाधा डालने या घुसपैठ करने की कोई ज़रूरत ही नहीं, क्योंकि न उनका काम होगा न आपका। सच में, इसके बारे में ज़्यादा कुछ नहीं कह सकते।

जब हम किसी और के अनुभव को सुनते हैं, हमें कुछ महसूस होता है। वह कहीं हमारे मन को छूता है, मन को प्रेरणा दे सकता है। लेकिन हमारे पास सुनाने का अपना ख़ुद का अनुभव है ही नहीं। हम कब तक जॉन होल्ट, नील या *मेरी ग्रामीण शाला की डायरी* के पन्ने पढ़वाते रहेंगे। वह जितने भी जीवन्त हों, हैं किसी और के ही। ख़ुद का पढ़ने-पढ़ाने का अनुभव गढ़ना ज़रूरी है।

शिक्षकों की मेंटोरशिप प्रक्रिया के लिए पैरेलली कुछ करने की कोशिश ज़रूर की जा सकती है। मसलन, अगर हर ब्लॉक या क्लस्टर में ऐसे शिक्षक जो अनुभव रखते हैं, और जिनमें अपने काम को, अपने पेशे को लेकर कोई अभिप्रेरणा है, ऐसे शिक्षकों को पहचानते हुए क्या उनको कुछ ज़्यादा स्वायत्तता और ज़िम्मेदारी अन्य शिक्षकों के सम्बन्ध में देने की कोई पेशकश की जा सकती है; क्या उनकी कोई भूमिका नहीं बनाई जा सकती है; इन बातों पर भी मैंने कई बार विचार किया है। साथियों के साथ भी बात होती है। और दुर्भाग्य के साथ कहूँ, मैंने यह पाया कि ऐसे शिक्षक हैं जो इसमें पहल नहीं करना चाहते। उनको लगता है कि अगर अपने दूसरे शिक्षक साथियों को कुछ कहना पड़े, या उनको कुछ प्रयास के लिए आगे करना पड़े, तब उनके ऊपर बात आएगी, उनकी बुराई होगी या उनके साथ मनमुटाव होगा, और निकलेगा कुछ नहीं। एक तरह की मायूसी तो है तंत्र के अन्दर कि अकादमिक स्तर पर शिक्षकों का अनुसमर्थन करने का कोई रास्ता दिख नहीं रहा, बन नहीं पा रहा।

कमलेश : स्कूल में शिक्षक के साथ काम करने में हमें किन बातों का ध्यान रखने की ज़रूरत है? आपके अनुसार इनके साथ मिलकर बेहतर काम कैसे किया जा सकता है?

रश्मि : इस मसले पर काफ़ी उधेड़बुन रहती है। अभी दो सुझाव मेरे मन में उभर रहे हैं। मैं नहीं कह सकती कि वह कारगर होंगे, पर एक ज़रूरत के रूप में वह महसूस होते हैं। एक यह कि मान लीजिए हमारी संस्था या आपकी संस्था के कार्यकर्ता हैं। ख़ुद को भी मैं इसमें शामिल कर लेती हूँ। शुरू के समय में, जब

हम पाठ्यचर्या का ट्रायआउट कर रहे थे, हम रोज़ स्कूल में जाकर पढ़ाते थे, शिक्षकों को पढ़ाता देखते थे, और क्या फ़ीडबैक लेना है, क्या परिवर्तन करना है, यह सोचते थे। उसके बाद हम अनुसमर्थन वाले रोल में आ जाते हैं। इसमें हम ख़ुद पढ़ा नहीं रहे होते हैं, कहीं मुझे इसकी कमी महसूस होती है। मुझे लगता है कि संस्था के कार्यकर्ताओं को नियमित ज़िम्मेदारी के साथ कुछ शिक्षण कार्यभार सँभालना चाहिए। जैसे, अपने ख़ुद के शिक्षण अनुभव में वृद्धि करना। शिक्षक के ज्ञान, शिक्षक की कुशलता, सुगमता, परिस्थितियों को लेकर उसकी पकड़, इन सभी की हमारी समझ समय के साथ बनती है। वह कुछ समय के लिए सामग्री ट्रायआउट करके नहीं बनती। एक शिक्षक का काम है, इतने बच्चों के साथ, सार्थक, सकारात्मक रूप से कुछ कर पाना और उनके विकास में सहयोग करना। वह भी रोज़-रोज़ और काफ़ी अनिश्चितता के साथ। शिक्षक विकास के शोध में यह बात सामने आती है कि एक शिक्षक को रोज़ अकेले होकर, अपने स्तर पर इतनी विविध परिस्थितियों (एक-एक बच्चा अपने-आप में पूरी-पूरी दुनिया लेकर आता है, और शिक्षक की अपने घर की, स्कूल की परिस्थितियाँ होती हैं) के बीच रोज़ समुचित शिक्षण का वातावरण पैदा करना चुनौती है। यह ज़िम्मेदारी और चुनौती हम में से शायद ही कोई लोग उठाते हैं, और निभाते हैं। जब हम ख़ुद उस चुनौती को नहीं उठाते, हमारे अपने ज्ञान की वृद्धि अवरुद्ध होती है। हमको सामग्री का, विषयवस्तु का ज्ञान होता है, और यह परिष्कृत से परिष्कृत होता जाता है। लेकिन शिक्षकीय पेशे का हमारा ज्ञान अविकसित रहता है। अगर हम शिक्षकीय पेशे के विकास में योगदान देना चाह रहे हैं, तब शिक्षक के पेशे का हमारा ज्ञान अपने निजी लेवल पर काफ़ी उत्कृष्ट स्तर पर पहुँचाने की कोशिश होनी चाहिए। उसकी व्यवस्था कर पाने में एक कमी लगती है।

दूसरा, मैंने शुरू में चिन्तनशील शिक्षक के बारे में बात की, और यह भी कि जब हम किसी और के अनुभव को सुनते हैं, हमें कुछ महसूस होता है। वह कहीं हमारे मन को छूता है, मन को प्रेरणा दे सकता है। लेकिन हमारे पास सुनाने का अपना ख़ुद का अनुभव है ही नहीं। हम कब तक जॉन होल्ट, नील, मार्गरेट मीड या *मेरी ग्रामीण शाला की डायरी* के और यहाँ-वहाँ के पन्ने पढ़वाते रहेंगे। वह जितने भी जीवन्त हों, हैं किसी और के ही। ख़ुद का पढ़ने-पढ़ाने का अनुभव गढ़ना ज़रूरी है। जैसे, एक बच्ची का उदाहरण मैं दे रही थी। भाग पढ़ाने के लिए मेरे मन में क्या उधेड़बुन आई; बच्चों के अनुशासन को लेकर मैंने किस स्थिति का सामना किया; या कैसे मैंने उसको हल किया; यह चिन्तनशील शिक्षक की मेरी अपनी कोशिश है। जब मैं इसको सामने रख पाऊँगी, तब दूसरे शिक्षकों के साथ एक सांस्कृतिक-भावनात्मक सम्बन्ध, आदान-प्रदान की गुंजाइश बनती है।

जब मेरे पास ही अनुभव नहीं है, और मैं दूसरी किताबों के पन्ने पढ़वा रही हूँ, यह मेरी कमी है। मुझे इस कमी को दूर करना चाहिए। चिन्तनशील शिक्षक की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए भी ज़रूरी है कि हमारा अपना भी चिन्तनशील शिक्षक का ज्ञान बनता रहे, बढ़ता रहे। हमारी संस्थाओं को स्कूल में पढ़ाने से फ़ायदा, और अच्छे तरीक़ों को फैलाने के दबाव का पुनरावलोकन करना चाहिए। हमारा लक्ष्य क्या था; क्या हम वहाँ तक पहुँच रहे हैं? और अब आप जैसे कह रहे हो, हम इनपुट गिविंग मोड में आ जाते हैं, तब वहाँ नहीं पहुँच पाते। जब उतना हम हासिल नहीं कर पाए तो रीलुक करो, चिन्तनशील एजुकेटर बनो, और अपनी स्ट्रेटजी पर पुनर्विचार करो। एक चिन्तनशील शिक्षक से यही अपेक्षित है न कि वह अपनी स्ट्रेटजी पर पुनर्विचार करे। फिर एजुकेटर को भी अपनी स्ट्रेटजी पर पुनर्विचार करना चाहिए, तभी हम एक चिन्तनशील एजुकेटर के रूप में काम करेंगे।

कमलेश : शिक्षण का ज्ञान बढ़ाएँ, और अपना ख़ुद का चिन्तन करें। लेकिन शिक्षक के साथ मिलकर काम करना है उसको कैसे गति मिले?

रश्मि : एक शिक्षक के साथ काम करने में हमारा शिक्षक के काम के बारे में ज्ञान ही उनसे कम्युनिकेट करने के लायक़ बनाएगा, तभी साथी शिक्षकों के साथ हमारा आदान-प्रदान ज़्यादा सफल हो पाएगा। मैं जानना चाहती थी कि स्व-आकलन के कुछ प्रारूप क्या किसी ने ट्रायआउट किए हैं। शिक्षक ख़ुद के आकलन के कुछ बिन्दु मिलकर तय करें। जैसे– वे अपने काम का आकलन किन बिन्दुओं पर करना चाहते हैं; किस अवधि में कौन-सी चीज़ कर पाए; क्या उपलब्धि रही; किन बातों में असफल रहे व क्यों; आदि। ऐसा कुछ प्रयोग से हम सीख सकते हैं, और उसे अपना सकते हैं। इसका हमें पता लगाना चाहिए। मुझे इस बारे में कम जानकारी है, इसलिए पूछ रही थी कि वैकल्पिक स्कूल, या जो प्रगतिशील विचारधारा वाले स्कूल हैं वहाँ से पता लगे कि वहाँ शिक्षकों के स्व-आकलन या सहपाठी आकलन की प्रक्रिया कैसे करते हैं।

शिक्षकों के साथ काम करते हुए मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कुछ लोग शिक्षक समूह में जुड़ते हैं, और फिर अपना काम करना शुरू करते हैं। लेकिन कभी कुछ शिक्षक कुछ शुरुआत करते हैं, और फिर पीछे हट जाते हैं। इसके पीछे कोई भी कारण हो सकता है। मसलन, पारिवारिक कारण, प्रेरणा की कमी, या और कुछ भी।

लेकिन एक बात ज़रूर है कि अगर सामने कोई लक्ष्य है, और एक समूह मिलकर उसको हासिल कर रहा है, किसी एक चीज़ को संचालित कर रहा है, उससे भी एक फ़ैसिलिटेटिंग सिचुएशन बनी रहती है कि आप लगातार क्रियाशील रहें, और अपना योगदान देते रहें। अगर कहीं ऐसा नहीं है, और आप बिलकुल अपने ऊपर हैं कि कितना किया, क्या नहीं किया, फिर आपका मनोबल, आपकी प्रेरणा भी थोड़ी कम हो सकती है।

जब मेरे पास ही अनुभव नहीं है, और मैं दूसरी किताबों के पन्ने पढ़वा रही हूँ, यह मेरी कमी है। मुझे इस कमी को दूर करना चाहिए। चिन्तनशील शिक्षक की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए भी ज़रूरी है कि हमारा अपना भी चिन्तनशील शिक्षक का ज्ञान बनता रहे, बढ़ता रहे।

कमलेश : स्व-मूल्यांकन कैसे हो सकता है?

रश्मि : 15 दिन या महीने में, पाँच स्कूलों के शिक्षक मिलकर अपने-अपने स्व-मूल्यांकन प्रपत्रों को भरते हैं। वे आपस में एक दूसरे को दिखाते हैं, और इस प्रक्रिया के लगातार होने से लक्ष्य पूर्णता रहती है। मेरे में इन चीज़ों की कमी रही थी। मैं देखती हूँ इस बार कैसा रहेगा, वह क्या कहता है मेरे काम के बारे में। मैं अपने काम के बारे में यह बताऊँगी, या अपनी समस्या को सामने रखूँगी। मतलब, कहीं एक प्रक्रिया बनती है जिसमें आप भागीदार हैं। आप कहीं-न-कहीं कोशिश कर रही हैं। ऐसी प्रक्रिया का बना रहना, एक सांस्कृतिक प्रक्रिया का बना रहना, आपकी लक्ष्य पूर्णता बनाए रख सकता है। लेकिन तब भी कोई गारंटी नहीं है, क्योंकि उतार-चढ़ाव सबके साथ ज़िन्दगी में होता है, आपसी मनमुटाव हो सकता है। आप आहत हुए किसी बात से, आपकी गरिमा को चोट लगी, आप कहना ही न चाहें उस बात को खुलकर, बस आप अलग हो जाना चाहते हैं, तब ऐसी बात का पता लगाना, उसको सुलझाना बहुत कठिन काम है। हम परिवार में ही देखते हैं। अपने घर के अन्दर हो जाता है। कई बार संवाद ही रुक जाता है। यह मानवीय प्रक्रियाएँ हैं। इनको रूलआउट कभी नहीं कर सकते। इनको साथ लेकर चलना पड़ता है।

कमलेश : शिक्षकों में पढ़ने की आदत का विकास कैसे किया जाए?

रश्मि : एक लाइब्रेरी बना देना बहुत सफल नहीं होता। कुछ विरले शिक्षक होते होंगे जो ख़ुद

से आकर वहाँ से कुछ लेकर जाएँ। लेकिन ऐसे कुछ शिक्षक हैं भी। हम शिक्षकों के बीच सामग्री (झोला पुस्तकालय) ले गए, और वहाँ उनको कहा कि इनमें से कुछ किताब ले लो। लेकिन एक महीने बाद पूछो तो वे बिना पढ़े वापस ही कर देते हैं। यह भी एक एकाकी प्रक्रिया हो जाती है। तीसरा प्रयास हमने किया कि सिर्फ़ किताब बाँटकर नहीं आएँगे। लंच टाइम पर चाहे दो पन्ने पढ़ें, दो पैराग्राफ़ पढ़ें, वहीं बैठकर पढ़ेंगे, ताकि थोड़ा स्वाद आए, तब वह पढ़ने के लिए अग्रसर हो सकेंगे। वे सभी तरह के प्रयास करने पड़ेंगे जो हमको सूझते हैं।

कमलेश : इसमें आपको ऐसा भी लगता है कि शिक्षक जिस माहौल से आते हैं वहाँ उन्होंने, माने कॉलेज में या स्कूल में, क्या पढ़ा?

रश्मि : यह सिर्फ़ शिक्षकों की बात नहीं है। हम अपनी संस्था में भी देखें कि सभी पढ़ने में बराबर की रुचि नहीं रखते हैं। काम के दबाव को कुछ लोग एक तरह से हैंडल कर पाते हैं, कुछ नहीं कर पाते। उस दबाव में पढ़ने का समय और रुचि बनाए रखना किसी के लिए सम्भव होता है किसी के लिए नहीं। इसको हम एक लक्ष्य के रूप में नहीं रख सकते हैं, और जो बीते समय में उनके कॉलेज में, या परिवार में हुआ हो, वह तो हो चुका उसका आज क्या करना!

कमलेश : मेरा प्रश्न यह है कि यदि रुचि ही नहीं बनी, तो क्या बाद में रुचि विकसित हो सकती है?

रश्मि : इसका जवाब हाँ में ही देना पड़ेगा, क्योंकि यह ऐसा सवाल है जिसका जवाब नैतिक रूप से 'नहीं' में नहीं दिया जा सकता। यह उम्मीद हरेक के लिए बनी रह सकती है। आप सम्भावना को ख़ारिज नहीं कर सकते।

कमलेश : शिक्षक जो लिखकर देते हैं उसको टाइप करके दिखाने पर उनको बड़ी ख़ुशी मिलती है कि उन्होंने जो लिखा है उसे कोई पढ़ रहा है।

रश्मि : और भी तरीक़े निकालने चाहिए। जैसे आप नई तकनीक की बात कर रहे थे। एक तो वह व्हाट्सऐप पर शेयर करना और उसे लाइक करना। मुझे इतना अनुभव नहीं है कि कैसे चलता है। ऐसे ही और तरीक़े भी निकलते रहने चाहिए जिसमें उनका अपना कंट्रीब्यूशन दिखे।

कमलेश : बच्चों के लेखन आदि से सम्बन्धित काफ़ी सारे वीडियो भी शिक्षक साझा करते हैं। चयनित सामग्री को हम इकट्ठा भी करते हैं।

रश्मि : इस सामग्री में थोड़ा दोहराव भी आने लग सकता है कि वही बात बार-बार हो रही है। इस बारे में सोचते रहना पड़ेगा। इसपर कोई समाचार बनाने का भी सोच सकते हो। मसलन, स्कूलों के समाचार, कि क्या-क्या प्रमुख चीज़ें हुईं, कहाँ-कहाँ पर क्या-क्या हुआ, आदि।

कमलेश : अन्त में शिक्षकों के विकास के बारे में कुछ और कहना चाहती हों?

रश्मि : हम सिर्फ़ इस दृष्टि से देख रहे हैं कि हम ख़ुद क्या कर सकते हैं; या क्या करते हैं; उसकी क्या भूमिका रही है। लेकिन मैंने इस बात पर ग़ौर किया कि जब हम शिक्षक की तैयारी के लिए कोर्स (बीएड, एमएड) बनाते हैं, तब एक बड़ा सवाल यह होता है कि उसमें क्या हो, और उसकी सामग्री कहाँ से आए। क्योंकि जो सैद्धान्तिक पढ़ाई प्री-सर्विस टीचर एजुकेशन में होती है वह एक तरफ़ पड़ी रहती है। जब शिक्षक स्कूल में पहुँचता है, वह अपने पुराने प्रतिबिम्ब, छवियों, ज्ञान के स्रोत से अपने काम को संचालित करने लगता है। क्या हम शिक्षकों के साथ साक्षात्कार करके उनकी कक्षा का अवलोकन करने के पश्चात उनसे बातचीत करके, कि उन्होंने क्या-क्या बहुत अच्छा किया; उनका आत्म-अवलोकन क्या है; उन्होंने कोई क़दम क्यों उठाया था; कोई रणनीति क्यों अपनाई थी; उनके दृष्टिकोण को समझकर,

उसको अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें मौक़ा देकर, और उसे दर्ज करके शिक्षक शिक्षा के लिए सामग्री का निर्माण कर सकते हैं? इससे शिक्षक के लिए ज्ञान का दस्तावेज़ीकरण हो सकेगा, उसको संकलित करने की सम्भावना बन सकेगी जोकि अभी बहुत हद तक ग़ायब है। शिक्षक के ज्ञान का मुद्दा इसलिए उठ रहा है कि शिक्षक शिक्षा के लोग इस दुविधा में हैं कि शिक्षक का ज्ञान होता क्या है। वह विषयवस्तु का ज्ञान पढ़ा सकते हैं, वह मनोविज्ञान के शोध का ज्ञान पढ़ा सकते हैं, लेकिन शिक्षक के पेशे का ज्ञान क्या है; एक रोज़मर्रा के शिक्षक के पेशे का ज्ञान क्या है; इसको पकड़ पाना और संकलित कर पाना ही मुश्किल साबित हुआ है। नए शिक्षकों को शिक्षित करने के लिए यह जो सामग्री आपको वास्तव में चाहिए, वह बहुत अविकसित है। अब क्या उस सामग्री को बनाने में यह संस्थाएँ कुछ मदद कर सकती हैं, यह एक सवाल है।

क्या हम शिक्षकों के साथ साक्षात्कार करके उनकी कक्षा का अवलोकन करने के पश्चात उनसे बातचीत करके, कि उन्होंने क्या-क्या बहुत अच्छा किया; उनका आत्म-अवलोकन क्या है; उन्होंने कोई क़दम क्यों उठाया था; कोई रणनीति क्यों अपनाई थी; उनके दृष्टिकोण को समझकर, उसको अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें मौक़ा देकर, और उसे दर्ज करके शिक्षक शिक्षा के लिए सामग्री का निर्माण कर सकते हैं?

कमलेश : स्वैच्छिक मंचों के साथ किए काम का कुछ अनुभव बताएँ।

रश्मि : हमने शिक्षकों के मंच 2001 से बनाने शुरू किए थे, जब यह स्पष्ट हो रहा था कि शासन के साथ हम अपने पाठ्यक्रमों को बहुत आगे तक नहीं फैला पाएँगे। हमने विकल्पों के बारे में सोचा, ताकि हम शिक्षकों के साथ पाठ्यक्रम पर, पढ़ने के तरीक़ों पर, अपने वार्तालाप को आगे बढ़ा सकें। तब से अब तक एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मंच बदलते रहे, बिगड़ते रहे, नए बनते रहे, लेकिन वह विचार अभी तक जीवित है। न सिर्फ़ एकलव्य के अन्दर ऐसे प्रयास अभी भी जारी हैं, पर अन्य संस्थाओं, अन्य राज्यों में भी ऐसे प्रयास किए गए हैं। हो सकता है ये अपने-आप से भी किए गए हों, या आदान-प्रदान भी हुआ हो। मैं कहूँगी कि यह अपने-आप में एक ऐसा बीज है जो कारगर साबित हुआ। यह एक ऐसी ज़रूरत है जिसकी भरपाई ऐसे मंचों के निर्माण से की जा सकी। पर इसका आकलन करना हमेशा बहुत मुश्किल रहा। हमपर भी काफ़ी दबाव था कि अगर स्वैच्छिक शिक्षकों के मंच बनाना आपका एक प्रमुख कार्यक्रम है, तब इसका आकलन कीजिए। इसका बच्चों के सीखने पर, शिक्षक के पढ़ाने के तरीक़े पर क्या असर पड़ रहा है, इसको प्रमाणित कीजिए। हमने प्रयास किया। शिक्षकों की कक्षाओं के लम्बे-लम्बे अवलोकन लिखे और ट्रांसक्राइब किए जाते थे, ताकि आप दो शिक्षकों की कक्षाओं में फ़र्क़ देखने की कोशिश कर सकें। और समीक्षात्मक दृष्टि से देखने पर आपको फ़र्क़ दिख जाएगा कि हाँ, यह बच्चों से अच्छे से बात कर रहे हैं, उनके अनुभव को शामिल करने की कोशिश कर रहे हैं, बच्चों को कुछ सक्रिय रख रहे हैं, उदाहरण दे रहे हैं, प्रश्न पूछ रहे हैं, कुछ गतिविधि करवा दे रहे हैं। यह कई जगहों पर दिखेगा कई जगहों पर नहीं भी दिखेगा। हमने काफ़ी सोच-विचार भी किया कि क्या वास्तव में यह प्रमाणित किया जा सकता है? ऐसा मूल्यांकन करना उचित है भी कि नहीं, क्योंकि दरअसल स्वैच्छिक मंच में शिक्षक की भागीदारी की जो इंटेंसिटी है, सघनता है, वह बहुत कम है।

हर महीने में एक दिन किसी रविवार को यदि शिक्षक अपने कार्यालय पर आए, तब बैठकर हमने चर्चा की, उसकी सघनता इतनी ही होती थी। उसमें भी एक बैठक में कुछ 10-

12 शिक्षक आए, अगले महीने की बैठक में इनमें से 6 आए। माने, नियमितता भी कम थी और सघनता भी काफ़ी कम। आप देख सकते हैं कि क्या हासिल हो रहा था। अभी भी वही सवाल है। मुझे लगता है कि जितनी सुविधा किसी के पास निजी स्तर पर है, जब वह आ सके, आ सकता है, और एक सांस्कृतिक प्रक्रिया में अपना योगदान दे सकता है। हिस्सेदारी में जो एक भावनात्मक जुड़ाव है उसे महसूस कर सकता है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण चीज़ है। लीडरशिप को इमर्ज करने, कोई नए क़दम को आगे पुश करने के लिए ऐसे भावनात्मक जुड़ाव वाले समूहों के बीज बन रहे हैं, यह बहुत ज़रूरी चीज़ है। कब स्थिति इसकी सम्भावना पैदा करती है, यह आप नहीं जानते, नहीं कह सकते, वह आपके हाथ में नहीं है। लेकिन जब वह सम्भावना पैदा होगी, यह समूह पहले से विकसित, पहले से जुड़े हुए, पहले से आपस में एकजुट हुए उपलब्ध होंगे जो उस काम को अंजाम दे पाएँगे। ऐसी उम्मीद के साथ यह जैसा चल पा रहा है उतना चलता रहे, और इसमें सुधार और समृद्धि की कोशिश होती रहे। यह भी एक कारगर उद्देश्य दिखाई देता है। हालाँकि, आप इसका आकलन करके प्रमाणित नहीं कर सकते कि इसका यह असर हो गया। लेकिन अगर हम सांस्कृतिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य से इस काम को देखते है, हम अपने नज़रिए को एक आशावादी नज़रिया बनाकर रख पाते हैं।

कमलेश : बहुत शुक्रिया।

रश्मि पालीवाल एकलव्य संस्था में 1982 से जुड़ी हुई हैं। सामाजिक अध्ययन शिक्षण के क्षेत्र में प्रमुख रूप से काम किया है। एकलव्य के प्रकाशनों के सम्पादन में सहयोग करती हैं। ज़मीनी स्तर पर प्राथमिक शिक्षा में सुधार की परियोजनाओं को लागू करने व उनका अध्ययन करने के प्रयासों से जुड़ी हुई हैं। 'बाल विकास विशेष ज़रूरतें और सीखना' नाम के सर्टिफ़िकेट कोर्स के संचालन से भी जुड़ी हैं।

सम्पर्क : paliwal_rashmi@yahoo.com

कमलेश चंद्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों– शिक्षक शिक्षा, बाल साहित्य, प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता आदि में गहरी रुचि। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर में कार्यरत।

सम्पर्क : kamlesh@azimpremjifoundation.org

स्कूल की परिकल्पना का बुनियादी आधार है बन्धुत्व की भावना

संवैधानिक मूल्य और उनका शिक्षण एक महत्त्वपूर्ण विषय है। इस अंक के संवाद में संवैधानिक मूल्य **बन्धुत्व** को विमर्श के लिए चुना गया है।

इस संवाद में शामिल सदस्य हैं : सत्यम श्रीवास्तव, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल से; वरुण कुमार, शासकीय प्राथमिक शाला बेलतरा, कुल केन्द्र सोरम, ज़िला धमतरी, छत्तीसगढ़ से; मुकेश कुमार, ज़िला जशपुर, छत्तीसगढ़ से; रश्मि गौड़, गवर्नमेंट मॉडल प्राइमरी स्कूल श्रीकोट गंगानाली, ब्लॉक खिर्सू, ज़िला पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड से; गुरबचन सिंह, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल से; रवि पाठक, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला बाड़मेर, राजस्थान से; और हृदयकान्त दीवान, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु से। जगमोहन इस संवाद के फ़ैसिलिटेटर हैं, और वे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, देहरादून में हैं।

जगमोहन : स्कूल की अपेक्षा बच्चे का सम्पूर्ण विकास करना है। इस बातचीत का मुख्य मक़सद यह है कि बच्चे के सम्पूर्ण व्यक्तित्व, जिसमें विभिन्न मूल्यों की बात भी शामिल है, को गढ़ने के लिए हम स्कूल में क्या करते हैं? *पाठशाला* पत्रिका में पहले भी इस तरह के संवाद हुए हैं। आज के संवाद का फ़ोकस संवैधानिक मूल्यों में शामिल एक मूल्य 'बन्धुत्व' पर है। जिसमें यह समझने की कोशिश की गई है कि विभिन्न भाषाओं, जाति, धर्म व पृष्ठभूमियों के लोग आपस में शान्तिपूर्ण तरीक़े से एक साथ रह सकते हैं, आपस में गरिमामय व्यवहार कर सकते हैं, और स्कूल में इस दिशा में कैसे शुरुआत की जा सकती है।



इस सन्दर्भ में आप सभी से पहला सवाल यह है कि बन्धुता का क्या मतलब है, और ये महत्त्वपूर्ण क्यों है? रवि, आप इन सवालों पर कुछ कहें।

रवि पाठक : किसी भी टर्मिनोलॉजी के मायने समय और सन्दर्भ के साथ बदलते रहते हैं। किसी ख़ास समय और सन्दर्भ में उसके कुछ ख़ास मायने होते हैं। हर देश का संविधान होता है, और उसके पीछे एक दर्शन होता है। बन्धुता का ज़िक्र हर देश के संविधान में हुआ है, ऐसा नहीं है। हमारे संविधान में बन्धुता को महत्त्वपूर्ण जगह दी गई है, और आज़ाद हिन्दुस्तान के मूल्यों, उसके समाज के बारे में यह एक दृष्टि देती है। हमारे यहाँ पर अलग-अलग तरह के लोग हैं, उनके ज़िन्दगी जीने के

तरीक़े अलग हैं, वो चाहे भौगोलिक वजह से हों, धर्म, पन्थ, सम्प्रदाय, भाषा की वजह से हों, या फिर किसी और वजह से। खानपान, वेशभूषा, नृत्य, नाटक विविध तरह के हैं। ऐसा हिन्दुस्तान आज का राष्ट्रीय राज्य है। इस सन्दर्भ में बन्धुता का सीधा मायना ये है कि हिन्दुस्तान के सभी लोगों में एक सम्बन्ध है, वो जुड़े हुए हैं। यहाँ के लोग अलग होकर भी एक हैं, क्योंकि हम एक राष्ट्र के रूप में एकजुट हुए, और एक राज्य के रूप में भी हम एक हैं।

जगमोहन : सत्यम, आप बन्धुता को कैसे समझते हैं? क्या आपको लगता है कि यह एक ज़रूरी विषय है?

सत्यम श्रीवास्तव : इसका शाब्दिक अर्थ निस्सन्देह भाई-भाई के बीच का रिश्ता है। कुछ भाषाओं और संस्कृतियों में बन्धु शब्द को भले ही शाब्दिक तौर पर भाई के रूप में माना गया हो, लेकिन इसे बरता गया है दोस्त के रूप में। विशेष रूप से बंगाल में, जहाँ बन्धु, बोन्धु हो जाता है, और जो हर किसी के लिए एक अच्छे / सम्मानजनक सम्बोधन के तौर पर इस्तेमाल होता है। एक भाई जो दोस्त की माफ़िक़ हो। यानी, जहाँ जन्म प्रदत्त पहचानें तो समान हों ही, लेकिन उम्र, या क़द-काठी, या त्वचा के रंग, या अन्य किसी भी ख़ासियत की वजह से भी आपस में भेदभाव का कोई कारण उत्पन्न न हो। यूँ भी कह सकते हैं कि दोस्ती में जिस तरह दो शख़्स बराबर हो जाते हैं, वैसे ही ये दो भाई भी बराबर हों।

अगर इस शब्द के मूल में जाएँ, उसका अभिप्राय यही होता है कि दो ऐसे लोगों, जो एक ही माता-पिता की सन्तान हैं, के बीच जो रिश्ता है, वह भाईचारा है, बन्धुता है। यानी, दो सगे भाई जन्म से प्राप्त होने वाली तमाम पहचानों के मामले में बराबर हैं। उनमें कोई भेद नहीं किया जा सकता, इसलिए दोनों ही मूल रूप से बराबर हैं।

स्कूलों की परिकल्पना में बन्धुत्व की भावना को बुनियादी आधार कहा जा सकता है। पाठशाला परिसर में पहुँचते ही सारे बच्चे एक हो जाते हैं। जाति, धर्म, लिंग, त्वचा के रंग या माँ-बाप की सम्पत्ति के आधार पर उनके बीच मौजूद असमानता स्वतः समाप्त हो जाती है। हालाँकि, यह परिकल्पना कभी भी साकार नहीं हो सकी, और पाठशाला परिसर में बच्चे अपनी तमाम पहचानों के साथ ही दाख़िला ले रहे हैं। विशेष रूप से गाँवों में, जहाँ सब एक दूसरे को



जानते हैं, वहाँ अपनी जन्म प्रदत्त पहचानों से बाहर निकलना बहुत दुरूह काम है।

इसी परिस्थिति में, स्कूलों के अन्दर इस भाव या मूल्य की भूमिका सबसे ज़्यादा है, क्योंकि समाज में विद्यमान तमाम संस्थाओं की तुलना में आज भी स्कूल ही वो अवसर और स्थान हैं जहाँ इस मूल्य की सहज उपस्थिति को महसूस किया जा सकता है। बच्चे आपस में खेल रहे हैं, झगड़ रहे हैं, साथ में काम कर रहे हैं, एक दूसरे के लिए तालियाँ बजा रहे हैं, एक दूसरे से प्रतियोगिता भी कर रहे हैं, लेकिन आमतौर पर दूसरे की सामाजिक हैसियत को परिसर के अन्दर किसी हद तक हावी नहीं होने दे रहे हैं।

दूसरी बात है कि स्कूल के सबक तात्कालिक नहीं होते, बल्कि वो ताज़िन्दगी एक इंसान के साथ चलते हैं। नागरिक बनाने की पहली पाठशाला भी यही है जहाँ बच्चे / बालमन एक स्वरूप लेते हैं।



यह पूरा मामला ही महसूस करने का है। जीने का है। मूल्यों को ख़ुद में रूपान्तरित करने का है, जिसे कहते हैं ट्रांसफ़ॉर्मेशन का है। स्कूल, सही मायनों में बच्चों के लिए रूपान्तरण की जगहें हैं। यह महज़ उन्हें पढ़ा-लिखाकर, रटाकर या उनकी परीक्षा लेकर पूरा किया जाने वाला काम नहीं है, बल्कि इसके लिए शिक्षक को इन तमाम शैक्षणिक प्रयासों से आगे जाना होता है, और ख़ुद के आचरण, व्यवहार और जीवन जीने के तौर-तरीक़ों से उन्हें सिखाना होता है। यह देखकर अपनाई जाने वाली शिक्षा है। यह ब्लैकबोर्ड के अभ्यास नहीं हैं। इसके लिए एक वातावरण तैयार किया जाना ज़रूरी है। ऐसा वातावरण अकेले शिक्षक का भी काम नहीं है, बल्कि इसके लिए विद्यालय से सम्बद्ध तमाम पक्षों को इन मूल्यों में भरोसा रखने, और उन्हें अपने आचरण में ढालने की बुनियादी आवश्यकता है।

बहुत जगहों पर शिक्षकों ने ऐसे प्रयास किए हैं। स्कूलों में गणवेश की परिकल्पना इसी विचार की उपज है जहाँ विद्यार्थी के कपड़ों से उनकी हैसियत का अन्दाज़ा न लगाया जा सके, बल्कि सब एक जैसे दिखें। ऐसा ही माहौल रजिस्टर में उनकी एंट्री को लेकर है। एक ख़ास अनुक्रम में उनके नाम लिखा जाना भी इसी विचार का विस्तार है। स्कूलों के संचालन की जो भी प्रविधियाँ हैं उनमें इस विचार का ख़्याल रखा गया है कि परिसर या कक्षा के अन्दर आपसी भेदभाव के तमाम प्रत्यक्ष कारणों को दूर रखा जाए। लेकिन सबसे बड़ा दारोमदार अन्ततः शिक्षक का ही है कि वो कैसे इस माहौल को एक सबक के तौर पर अपने विद्यार्थियों तक पहुँचाए।

जगमोहन : मुकेश, आप इस बात में कुछ जोड़ना चाहेंगे?

मुकेश कुमार : दोनों साथियों ने बन्धुता की एक पृष्ठभूमि रखी है। मैं भी बन्धुता को उसी तरह से देखता हूँ। लोकतंत्र के जो तीन बुनियादी सिद्धान्त फ़्रांस की क्रान्ति से उभरकर आए थे, वे हैं– स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व। बन्धुत्व के बग़ैर स्वतंत्रता का भी कोई अर्थ नहीं है। असल में, ये तीनों परस्पर पूरक हैं। बन्धुता दरअसल परस्पर मेल है। यदि बन्धुता न हो, समानता भी बहुत सीमित हो जाएगी। लेकिन जिस लोकतंत्र की हम कल्पना करते हैं, उसके अनुरूप समाज कैसे विकसित हो, देश-दुनिया कैसे विकसित हो, इसके लिए बन्धुता एक ज़रूरी मूल्य है। बन्धुता केवल देश की चारदीवारी की सीमाओं के मातहत न हो। बन्धुता एक व्यापक और ज़रूरी अवधारणा है। जाति, धर्म, वर्ण, जेंडर, रंग को लेकर तरह-तरह की दीवारें, पूर्वाग्रह

दुनियाभर के समाजों में मौजूद हैं, लेकिन इन सबके बीच सहअस्तित्व की बात भी है। सभ्य समाज, सभ्य दुनिया बनाने के लिहाज़ से बन्धुता एक ज़रूरी मूल्य है।

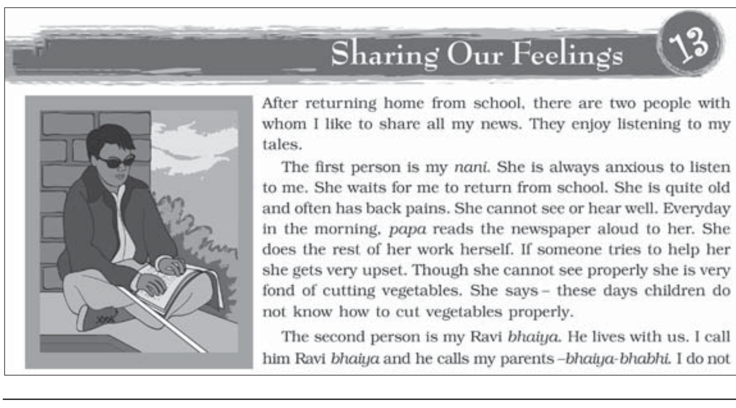
जगमोहन : शुक्रिया मुकेश! रश्मिजी और वरुणजी कक्षाओं में बच्चों के साथ काम कर रहे हैं। आप बताएँ, स्कूल में इस सन्दर्भ में क्या कर पाते हैं?

वरुण कुमार : हर विद्यालय में बच्चे अलग-अलग पृष्ठभूमियों से आते हैं। हम इन विविध वर्गों के बच्चों के साथ ही काम करते हैं। बहुत-से बच्चे रूढ़िवादी विचारधारा वाले परिवारों से आते हैं। हम स्कूलों में ऐसी गतिविधियाँ करते हैं, जो बन्धुता की भावना को पोषित करें, विकसित करें। शुरुआत प्रार्थना सभा से होती है। हमारे स्कूल में पहले लड़के और लड़कियाँ अलग बैठते थे, लेकिन अब बैठक व्यवस्था बदल दी गई है। जो बच्चे साधन सम्पन्न घरों से आ रहे हैं, उनकी यूनिफ़ॉर्म बढ़िया थी, वहीं कुछ अन्य की नहीं। इसलिए हमने इसमें भी एकरूपता लाने की कोशिश की। बच्चों से समानता और विविधता पर बात करना शुरू किया। हम सब एक ही तरह के हैं, क्योंकि हम सबका ख़ून लाल है। धीरे-धीरे, बच्चों में एक जुड़ाव बनने लगा। उन्होंने भी विद्यालय को एक परिवार के रूप में देखना शुरू किया। अब बच्चे एक साथ बैठना, बातचीत करना, खेल गतिविधियों में एक साथ काम करना पसन्द कर रहे हैं।

जगमोहन : रश्मिजी, अपने स्कूल के बारे में बताएँ।

रश्मि गौड़ : अभी तक कही बातों से मैं सहमत हूँ। हर किसी का अपना एक व्यक्तित्व होता है, और उसका एक सम्मान है। हम प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान कर पाएँ, उसे अपने जैसा ही समझ पाएँ, ये ही बन्धुता की भावना है। विद्यालय में होने वाले विभिन्न क्रियाकलापों में इस नज़रिए को हमने शामिल किया है।

हमारे यहाँ प्रार्थना सभा में कुछ बच्चे जल्दी आ जाते हैं, और कुछ थोड़ा देरी से आते हैं। हमने एक नियम बना रखा है कि जो बच्चे पहले आएँगे, वे लाइन में आगे खड़े होंगे। किसी भी बच्चे की कोई विशेष जगह नहीं है कि फलाँ व्यक्ति आगे खड़ा होगा या पीछे। जो पहले आएगा उसी क्रम में वो होंगे। उन्हें पता है कि जिस दिन मैं जल्दी आऊँगा मुझे आगे खड़ा होना है, और मैं देर से आऊँगा तो मुझे पीछे खड़ा होना है। सभा में हर भाषा को महत्त्व देने के लिए हमने प्रत्येक भाषा के लिए दिवस भी निर्धारित किए हुए हैं। दो दिन प्रार्थना सभा की सारी गतिविधियाँ अँग्रेज़ी में होती हैं, दो दिन हिन्दी में, एक दिन संस्कृत, व एक दिन गढ़वाली भाषा में सारी गतिविधियों का संचालन किया जाता है। प्रार्थना सभा का संचालन सभी कक्षाएँ बारी-बारी से करती हैं। जब कक्षा एक और दो की बारी आती है, तब उन्हें चौथी-पाँचवीं वाले बच्चे सपोर्ट करते हैं। शुरुआत में, गढ़वाली भाषा में बच्चे असहज थे, लेकिन धीरे-धीरे वे स्थानीय भाषा में भी अच्छे से प्रस्तुतियाँ करने लगे।


Sharing Our Feelings 13

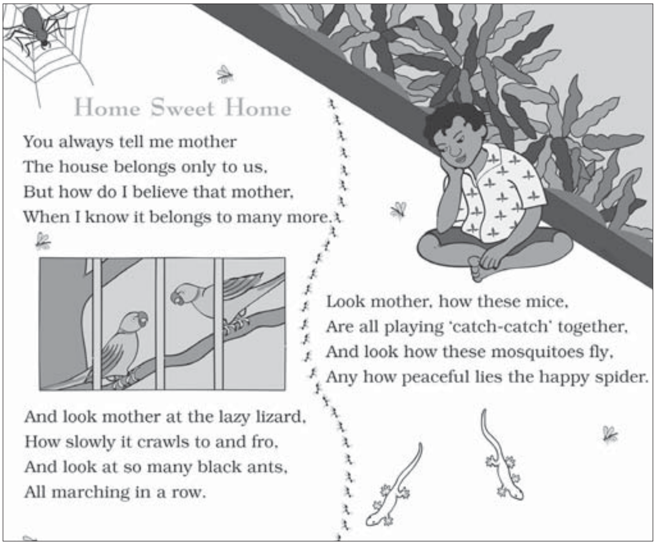
After returning home from school, there are two people with whom I like to share all my news. They enjoy listening to my tales.

The first person is my *nani*. She is always anxious to listen to me. She waits for me to return from school. She is quite old and often has back pains. She cannot see or hear well. Everyday in the morning, *papa* reads the newspaper aloud to her. She does the rest of her work herself. If someone tries to help her she gets very upset. Though she cannot see properly she is very fond of cutting vegetables. She says– these days children do not know how to cut vegetables properly.

The second person is my Ravi *bhaiya*. He lives with us. I call him Ravi *bhaiya* and he calls my parents –*bhaiya-bhabhi*. I do not

बच्चों को आपस में सहयोग कराना सिखाना भी हम ध्यान में रखते हैं। एनसीईआरटी की किताबों में बहुत-से ऐसे अध्याय हैं जिनके माध्यम से हम बच्चों से सीधेतौर पर बन्धुत्व की भावना पर बात कर पा

रहे हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा 3 में ईवीएस का एक अध्याय है 'शेयरिंग अवर फ़ीलिंग्स'। उसमें एक परिवार की बात है जिसमें एक लड़की स्कूल की बातें घर आकर अपनी नानी से शेयर करती है। नानी बुज़ुर्ग हैं, कम सुनती हैं, इसलिए लड़की ज़ोर से बोलती है। उसके पिताजी नानी को अख़बार पढ़कर सुनाते हैं। किताब में ऐसी गतिविधियाँ भी दी गई हैं कि प्रत्येक बच्चे की आँखों पर पट्टी बाँधकर उसे कुछ काम करने को दिया जाए। बाद में वह बताए कि उसको ऐसे काम करने में कैसा महसूस हुआ। इस तरह से हम एक ऐसे व्यक्ति की परेशानियों को, उसकी भावनाओं को समझ पाएँगे जो देख नहीं पा रहे हैं। एक और अध्याय 'होम स्वीट होम' नाम की एक कविता है। बच्चे कहते हैं कि यह सिर्फ़ हमारा ही घर तो नहीं है। इसमें छिपकली भी रहती है। मकड़ी और चूहे भी हमारे साथ रह रहे हैं। एक सहजीवन, बन्धुत्व की भावना की बात यहाँ आती है कि हम बन्धुत्व को मनुष्यों तक ही नहीं सीमित न रखकर इसको सभी प्राणियों व जीव-जन्तुओं तक भी ले जाने का प्रयास हम करते हैं।



स्कूल में प्रत्येक महीने के आख़िरी शनिवार को उस महीने में जन्मे सभी बच्चों का जन्मदिन मनाते हैं। पूरी तैयारियाँ बच्चे ही करते हैं। अपने हर एक साथी के साथ जब वो सहयोग लेते हैं, उनमें कहीं-न-कहीं एक सहयोग की भावना बनती है। खाना खाते समय छोटे बच्चों का ध्यान रखना, कहीं उनको कोई सहायता की ज़रूरत तो नहीं है। हमारे यहाँ छोटे बच्चे पहले खाना खाते हैं, बड़े बच्चे उनकी सहायता करते हैं। उसके बाद बड़े बच्चे खाना खाते हैं।

जगमोहन : वरुण, आप अपनी बात रखें।

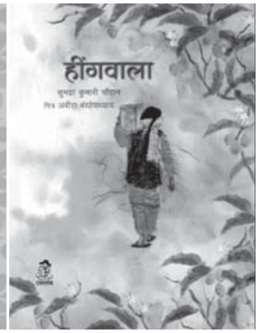
वरुण कुमार : हम लोगों ने बच्चों के साथ रचनात्मक लेखन की शुरुआत की है। बच्चों को स्थानीय स्तर पर जुड़ी चीज़ों से सम्बन्धित एक थीम देते हैं, और बच्चे अपने तरीक़े से अपने विचार लिखते हैं। सभी बच्चों के द्वारा किए गए कार्यों को हम एक प्रिंट फ़ॉर्म में दीवार अख़बार जैसा लगाते हैं, ताकि बच्चे अपने किए कार्यों को देख सकें। इससे बच्चे प्रोत्साहित होते हैं, और उन्हें कुछ और नया व बेहतर करने की इच्छा होती है। पूरे साल हर सप्ताह 1 दिन यह गतिविधि होती है जिसमें कक्षा 1 से 5 तक के सारे बच्चे भाग लेते हैं। बच्चे अपनी क्षमताओं के अनुसार चित्र बनाते हैं, कुछ वाक्य लिखते हैं, अनुच्छेद लिखते हैं। सभी बच्चों को समान रूप से कार्य करने का एक अवसर मिलता है। हम कहानी उत्सव का भी आयोजन करते हैं। इसका उद्देश्य गाँव के सभी बड़े-बुज़ुर्गों को जोड़ना है।

जगमोहन : रश्मिजी, आप बताएँ।

रश्मि गौड़ : हमारे स्कूल में वार्षिकोत्सव की तैयारी के दिनों एक मुस्लिम परिवार से तीन बहनों ने स्कूल में एडमिशन लिया। उनमें से सबसे बड़ी वाली लड़की स्कूल में हिजाब पहनकर आती थी। जब डांस के लिए बच्चों का चयन कर रहे थे, हिजाब पहनने वाली लड़की का चयन नहीं हुआ जबकि बाक़ी दोनों बहनों का हो गया। हमें लगा कि डांस कॉस्ट्यूम में हिजाब हटाना होगा, इसलिए तय किया कि







उसे डांस में न रखा जाए। लेकिन उसकी माँ ने स्कूल में आकर बात की, और बताया कि वह डांस करना चाहती है। उन्होंने कहा कि हिजाब ज़रूरी नहीं है, वह सिर्फ़ शौक़ से पहनती है। इस आपसी बातचीत से समस्या का हल निकल गया। कई बार बात उतनी भी उलझी नहीं होती है जितनी हम समझ बैठते हैं।

जगमोहन : गुरबचनजी, बन्धुता को समझाने में पाठ्यपुस्तकों का क्या इस्तेमाल हो सकता है?

गुरबचन सिंह : पाठ्यपुस्तक की अपनी कुछ सीमाएँ भी होती हैं, और पाठ्यपुस्तक की केन्द्रीयता के कारण कुछ मुश्किलें भी होती हैं। अतः पाठ्यपुस्तक के इर्द गिर्द संवैधानिक मूल्यों की बात करेंगे तो उसमें पाठ्यपुस्तक भी शामिल होगी, और तमाम वे किताबें भी शामिल होंगी जो शिक्षण प्रक्रिया का हिस्सा रहती हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि उन सीमाओं के रहते पाठ्यपुस्तकों में ऐसी सामग्री नहीं मिल पाती है जिनका इस्तेमाल इस तरह के मूल्यों को विकसित करने के लिए कर पाएँ। बच्चों को पढ़ाई जा रही किताब में दिख रहे स्पर्श बिन्दु जहाँ बन्धुत्व, विविधता, या किसी अन्य संवैधानिक मूल्य की बात हो, उसपर तर्कपूर्ण अवसर बनाते हुए बातचीत की जा सकती है। अभ्यास कार्य ऐसे बनाएँ कि वहाँ पर भी बच्चों के साथ मूल्यों पर गहराई से सोचने-विचारने की सम्भावना बन सके। कई बार किताबों को उलटते-पलटते हुए मुझे कुछ ऐसी नायाब किताबें दिखती हैं, जो शब्द की चर्चा किए बग़ैर बन्धुता की बात को काफ़ी सहजता और गहनता से उठाती हैं, व पाठक को बार-बार सोचने के लिए बाध्य करती हैं। मसलन, सुभद्रा कुमारी चौहान की चर्चित कहानी *हींगवाला*, मुस्कान से प्रकाशित *नरम गरम दोस्ती*, तूलिका प्रकाशन से छपी *मुकंद और रियाज़*, जुगनू से प्रकाशित *एक बड़ा अच्छा दोस्त* और *तारिका का सूरज* बच्चों के लिए कुछ ऐसी ही नायाब कहानियाँ हैं। इन कहानियों में भाईचारे की सुरक्षा भाव का स्पन्दन है। इनमें हर तरह की सीमाओं से ऊपर उठकर



बिना शर्त, हर तरह का जोख़िम लेकर, एक दूसरे की देखरेख व मदद करने की जवाबदेही की गर्माहट महसूस की जा सकती है।

इसी तरह एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक *वसंत* भाग तीन में महत्त्वपूर्ण लेख है, 'क्या निराश हुआ जाए'। इसमें यात्रियों से भरी एक बस, जिसमें छोटे बच्चे और महिलाएँ भी होती हैं, दुर्गम क्षेत्र में रात के अँधेरे में ख़राब हो जाती है, और बस का कंडक्टर अचानक बस से उतरकर भाग जाता है। चिन्ता और घबराहट के मारे यात्री बस के ड्राइवर को बहुत भला-बुरा कहते हैं, और पीटने पर उतारू हो जाते हैं। अचानक वे देखते हैं कि एक बस आ रही होती है। यात्रियों को लगता है कि उनके साथ कुछ साज़िश हुई है। जैसे ही आने वाली बस यात्रियों के पास रुकती है, एक व्यक्ति कूदकर नीचे उतरता है। वह कहता है कि यह बस अभी ठीक नहीं हो सकती है, इसलिए उन सबको गन्तव्य स्थान पर भेजने के लिए पीछे से दूसरी बस लाया हूँ, और भूखे बच्चों के लिए दूध-रोटी। वह बस का कंडक्टर था। रात के अँधेरे में मीलों दौड़कर जाना, और अपरिचित यात्रियों के लिए यह सब करना, बहुत कुछ कहता है।



इस विवरण पर चर्चा करते हुए हमें बहुत सारे वो आधार मिलते हैं, जो बच्चों के साथ बातचीत में बन्धुता के मूल्य को बहुत अच्छे तरीक़े से रखने की कोशिश करते हैं, बग़ैर बन्धुता की बात को कहे। इस तरह के कई उदाहरण किताबों में तलाश सकते हैं। व्यक्तिगत प्रयास के तौर पर ही नहीं, एक पूरे शिक्षकीय समुदाय के सामूहिक प्रयासों के द्वारा यदि हम अपनी किताबों की मैपिंग करें, और ये देखने की कोशिश करें कि कौन-कौन सी रचनाएँ हैं, उन रचनाओं में हम कैसे बच्चों को, इन मूल्यों के साथ एंगेज कर सकते हैं। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए ये सफ़र बहुत ज़रूरी है। इस तरह की कुछ कहानियों पर रचनाओं के इर्द गिर्द अन्य माध्यमों के ज़रिए, कुछ प्रोजेक्टों पर भी काम करें, कुछ इस तरह के असाइनमेंट बच्चों को दें जिनसे वे उसके बारे में गहराई से सोच सकें, अपने विचार प्रस्तुत कर सकें, अपनी असहमतियों को पेश कर सकें, और इन मूल्यों को समझ सकें।

जगमोहन : कक्षा में इन मूल्यों पर काम करने के लिए किस प्रकार की तैयारी करनी पड़ती है?

रवि पाठक : इन मूल्यों पर बातचीत के लिए पाठ्यपुस्तक से इतर साहित्य की उपलब्धता, और बच्चों तक उसकी आसान पहुँच ज़रूरी है। मसलन, *त्रिशंकु* (मन्नू भंडारी) जैसी कहानियाँ। इस तरह की कहानियों पर बातचीत ज़रूरी है। ऐसा नहीं कि रोज़ इनपर बात हो, बल्कि जब लगे कि बातचीत का मौक़ा है, बात होनी चाहिए। और यदि शिक्षक भी इस तरह का साहित्य पढ़ते हैं, तब सामने ऐसा मुद्दा आने पर समझ जाते हैं, और उनके पास विकल्प भी होते हैं।

जगमोहन : मुकेश, आप अपने विचार रखें।

मुकेश कुमार : एक शिक्षक के उपदेश और बातचीत से ज़्यादा, उसके व्यवहार का असर बच्चे पर पड़ता है। कक्षा में या स्कूल में किसी परिस्थिति का सामना शिक्षक कैसे करते हैं, उसको देख बच्चे सीख रहे होते हैं। पहली-दूसरी के बच्चों के साथ काम करने के दौरान की एक घटना है। स्कूल खुला ही था। पहली-दूसरी की लड़कियाँ ख़ुद से अपनी कक्षा साफ़ कर रही थीं। झाड़ू एक ही थी, वे बारी-बारी से

काम कर रही थीं। लड़के साइड में खड़े थे। मैंने लड़कों से पूछा कि आप झाड़ू क्यों नहीं लगा रहे हैं। उनका जवाब था, झाड़ू देना लड़कियों का काम है। यह पहली-दूसरी के बच्चे हैं। समाज में जेंडर, कास्ट को लेकर मौजूद भेदभाव को बच्चे अपने जीवन में ग्रहण करते जाते हैं। शिक्षित लोग भी कई बार जातिवादी शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, जो ठीक नहीं है। कक्षा प्रक्रिया इन मान्यताओं को तोड़ने वाली होनी चाहिए। इसके लिए हम आपसी सहयोग के मौक़े गढ़ते हैं। जैसे, नहीं पढ़ पाने वाले बच्चों का अन्य बच्चे मज़ाक़ उड़ाते हैं। इससे बच्चे की गरिमा क्षतिग्रस्त होती है। कक्षा में हम पढ़ पाने वाले बच्चे को न पढ़ पाने वाले बच्चे की मदद के लिए बोलते हैं। इससे उनमें एक दूसरे को सहयोग करने की भावना का विकास होता है। मुझे लगता है, हमपर आज भी औपनिवेशिक असर है। अँग्रेज़ भारतीयों को हीन समझते थे, लेकिन हम अपने ही भाई-बन्धु को हीन समझते हैं। पढ़े-लिखे लोग भी कई बार बोलते हैं कि ये तो ग़रीबों के बच्चे हैं, ये क्या पढ़ेंगे? ये मज़दूरों के बच्चे हैं, ये फलानी जाति के बच्चे हैं, ये क्या पढ़ेंगे? जब हमारी चेतना इस तरह की होगी, हम समाज की विसंगतियों को स्कूल में भी रेप्लिकेट कर रहे होंगे।

जगमोहन : बन्धुता को लेकर जब काम करते हैं तो किस प्रकार की चुनौतियाँ आती हैं? आप कैसे उनका सामना करते हैं? हृदयकांत सर से मैं ये जानना चाह रहा था कि बन्धुता जैसे मूल्यों पर आपका क्या अनुभव रहा है?

हृदयकांत : मैं दो बातें कहना चाहता हूँ। एक मुद्दे के रूप में रखना चाहता हूँ, और दूसरी पूछना चाहता हूँ। होशंगाबाद में स्कूलों में काम करने के दौरान एक बहुत बड़ी चुनौती दिखती थी। स्कूलों में बच्चों की मान्यता वैसी ही थी, जैसा रवि ने कहा। मसलन, झाड़ू तो लड़कियाँ लगाती हैं, यह उनका काम है। स्कूल में शिक्षकों से मिलने जाने पर हमेशा लड़कियाँ ही हमें चाय-पानी पूछतीं। कई बार हेडमास्टर उनको चाय बनाने की ज़िम्मेदारी भी देते थे। आज वो होता है कि नहीं, मुझे नहीं पता। लेकिन तब मेरे दिमाग़ में दो सवाल आते थे। पहला, इन बच्चों को कक्षा से निकाला क्यों गया है? दूसरा, लड़कियों को ही क्यों निकाला गया है? अभी एक साथी ने कहा कि कुछ बच्चों को लेकर ऐसा माहौल होता था कि ये बच्चे अलग हैं, ये बच्चे फ़र्क़ हैं। साथी शिक्षिका ने बताया था कि उनके यहाँ एक मोहल्ले के बच्चे आ ही नहीं पाते थे, क्योंकि उनको स्कूल आने के समय दूसरे मोहल्ले में से होकर गुज़रना पड़ता था, और वहाँ से वो गुज़र नहीं पाते थे। उन्होंने काफ़ी संघर्ष किया। लेकिन उस संघर्ष का बहुत नतीजा वो नहीं निकाल पाए। फिर दूसरी तरफ़ एक और स्कूल बना, और उसमें वो बच्चे जाने लगे। इस तरह की परिस्थितियाँ आज भी हैं। मैं ये समझना चाह



रहा था कि क्या इस तरह की समस्याएँ अन्य लोगों ने भी कभी देखी हैं। एक चिन्ता का मसला यह था। दूसरा, बहुत सारी परिस्थितियों में बच्चे बग़ैर किसी के कहे ख़ुद ही किसी उत्पीड़न के बारे में बहुत पॉज़िटिवली, स्वाभाविक तौर पर एक दूसरे से अन्तर्क्रियाएँ करते रहते हैं, और एक दूसरे की मदद करते रहते हैं। इस स्वाभाविकता में बाहर की प्रक्रियाओं का, स्कूल के लोगों का काफ़ी योगदान हो सकता है। मैंने देखा है, कई शिक्षक बहुत पॉज़िटिव तरीक़े से इन मूल्यों को विकसित करने में कंट्रिब्यूट करते हैं, और वो ऐसी कविताओं और गीतों का चयन करते हैं। मैं दो बातें कह रहा हूँ। पहली, स्वाभाविक अन्तर्क्रिया को होने देना, और उसके प्रति जो नकारात्मक टिप्पणियाँ हैं उनको रोकना। दूसरा, सचेत रूप से कमज़ोर, बोलने में झिझकने वाले, स्कूल की भाषा नहीं बोल सकने वाले बच्चों को अपनी बात, अपनी भाषा में अभिव्यक्त करने देना। मैंने बहुत शिक्षकों को देखा है। उन्होंने इसपर बहुत कोशिश करके काम किया, और उन कक्षाओं में फिर उन बच्चों का बहुत पॉज़िटिव रोल रहा बाक़ी बच्चों के साथ बातचीत करने में। और एक काफ़ी अच्छा कोऑपरेटिव सीखने का माहौल भी बना।



जगमोहन : शिक्षक की समझदारी, नज़रिया, और उसकी संवेदनशीलता बहुत मायने रखती है। जब मैं स्कूल में काम कर रहा था, और अभिभावकों से बात होती थी कि क्या आपके यहाँ लड़के-लड़कियों के बीच में भेदभाव होता है। हमेशा जवाब आता था, नहीं होता है। कक्षा की बातचीत में बच्चे भी कहते कि नहीं होता है। फिर हमने कक्षा 6-7-8 के बच्चों के साथ एक प्रयोग किया था। बच्चों से कहा कि तुम रोज़ाना डायरी लिखो, और बच्चों ने लिखी भी। उस डायरी में कई बातें निकलकर आईं। उदाहरण के तौर पर, कक्षा 5 की कुछ लड़कियों ने लिखा : "मामा घर में आते हैं। वे भाई को गोद में उठाते हैं, मुझे गोद में नहीं उठाते हैं"; "दादी भाई को ज़्यादा मक्खन देती है, मेरे को कम देती है। मुझे ये कभी अच्छा नहीं लगता, पर कभी-कभी लगता कि चलो, भाई छोटा है, छोड़ देते हैं"; "हमारे यहाँ गाय है, कम दूध देती है, सिर्फ़ भाई को ही पीने को मिलता है"; "भाई को बुख़ार आने पर डॉक्टर के पास ले जाते हैं, मुझे घर पर ही दवाई दे देते हैं"; आदि। ऐसे तमाम उदाहरण थे। ये डायरी जेंडर भेदभाव को समझने के लिए बहुत कारगर हुई। इस काम से हमारा भ्रम भी टूटा, और हम लड़कियों की स्थिति को लेकर और संवेदनशील भी हुए। एक और वाक़िए से यह समझ बनी कि बच्चों के साथ उनकी ऐसी मुश्किलों को लेकर काम किया जाए, लेकिन तब उनकी निजता का भी ख़्याल रखा जाए। मैं पुनः यह सवाल दोहराता हूँ कि स्कूलों में ख़ासतौर से बन्धुता को लेकर किस प्रकार की तैयारी करने की ज़रूरत पड़ती है, और क्या चुनौतियाँ आती हैं।

वरुण कुमार : हमारे विद्यालय के बच्चों के पालक लगभग रोज़ सुबह मज़दूरी करने निकल जाते हैं, और शाम को वापस आते हैं। आर्थिक समस्या है ही, और इस वजह से बच्चे कुपोषित हैं। नतीजा यह होता है कि बच्चों को काफ़ी कमज़ोरियाँ रहती हैं, और वे बीच-बीच में बीमार भी होते रहते हैं। पालकों का कहना था कि लड़के-लड़कियों में बहुत भेदभाव किया जाता है। लड़का कुलदीपक है, परिवार को आगे ले जाएगा, इसलिए उसको प्राइवेट स्कूल में भेजते हैं (उनका मानना है कि प्राइवेट स्कूल अच्छा है), और लड़की को सरकारी स्कूल में। जब संवैधानिक मूल्यों को लेकर एसएमसी में बातचीत की, पुरुष और महिला के काम को देखा, उसमें भी पाया कि पुरुष केवल बाहर के ही काम देखते हैं। बाक़ी

सारे काम सुबह से लेकर रात तक महिलाएँ ही करती हैं। माने, घर पर भी बच्चों को एक विपरीत माहौल ही मिलता है। हम पालकों से लगातार मिले, उनसे इसपर लगातार बातचीत की, तब धीरे-धीरे लोग हमसे जुड़ते गए। स्कूल में बालिकाओं की दर्ज संख्या और उपस्थिति भी बढ़ी है। हम पुस्तकालय भी संचालित कर रहे हैं। बच्चों को स्कूल में पढ़ने के अलावा, घर पर भी किताब ले जाने के लिए देते हैं। बच्चे ख़ुद पालकों के साथ बैठकर कहानियों, और उन पुस्तकों पर बातचीत कर रहे हैं।

जगमोहन : शुक्रिया। कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु, यदि कोई रखना चाहें?

रश्मि गौड़ : जब मिड-डे मील योजना शुरू हुई थी, तब हमारे स्कूल में एक वर्ग हमेशा सभी के साथ बैठकर खाने से इंकार करता रहा है, और कुछ हद तक अभी भी, क्योंकि हमारे समाज में हैं ये चीज़ें। इससे हमको स्कूल में दिक़्क़तें आती हैं। कुछ अभिभावकों ने कहा कि हम अपने बच्चों को स्कूल का खाना नहीं खाने देंगे। फिर हमने एक बैठक रखी। बातचीत में उन्होंने शर्त रखी कि बच्चे खाना तब खाएँगे जब वे अलग-अलग समुदाय के अनुसार भोजन करने बैठेंगे। कुछ दिन तो ऐसा रहा, लेकिन इसके बाद बच्चे कक्षावार बैठने लगे। ख़ैर, अब सभी साथ में खा लेते हैं, लेकिन कभी-कभी दिक़्क़त आती है। जैसे, एक बच्चे को उसकी दादी ने स्कूल में दूसरे बच्चों के साथ खाना खाते देखा, वो बड़ी नाराज़ हो गईं। उन्होंने बिना बताए अपना बच्चा हमारे स्कूल से निकालकर दूसरे स्कूल भेजना शुरू कर दिया। बहुत-सी ऐसी समस्याएँ होती हैं, और ऐसी परिस्थिति में कई बार हम अपने-आप को एक तरह से असहाय-सा महसूस करते हैं। बच्चे भी सवाल करते हैं कि वो बच्चा अचानक से क्यों स्कूल से चला गया। हम शिक्षकों पर भी ये प्रश्न चिह्न आते हैं। अभी भी समाज में ऐसी चीज़ें बहुत गहरी हैं, जिनको हम एकदम से निकाल नहीं सकते। बच्चा समाज से आ रहा है, और शिक्षक भी समाज से ही आ रहा है। ज़रूरी नहीं कि हर शिक्षक बन्धुत्व की भावना, या संवैधानिक मूल्यों को लेकर स्कूल में आए।

जगमोहन : आपकी बात से समझ में आता है कि इस सारी बातचीत में शिक्षक का संवेदनशील होना, शिक्षक की समझ होना, एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। दूसरा, स्कूल में, चाहे असेंबली का टाइम हो या खेलकूद का, प्रार्थना हो, क्लासरूम या कोई दूसरी गतिविधियों की जगह, जहाँ मौक़े तलाशते हुए हमको कुछ करने की ज़रूरत पड़ती है। और जब कुछ करने की ज़रूरत की बात करें, तब संवाद, बातचीत, और सवाल, ये महत्त्वपूर्ण टूल हैं। इनका उपयोग करना ही होता है। पर इसके अलावा भी कुछ करने की ज़रूरत है, जिससे बच्चों में सेंसिटिविटी, वो एम्पथी बढ़े। फिर चाहे वो एक्ट करवाना हो, उसको रियलाइज़ करवाना हो, फ़िल्म की स्क्रीनिंग हो, या वो स्टोरी टेलिंग हो, या कहानी के माध्यम से उनको कुछ महसूस करवाना, यह बहुत कुछ करने की ज़रूरत पड़ती है। छुट्टी के दिन देर शाम तक इतना समय दिया, इसके लिए आप सभी का बहुत-बहुत शुक्रिया।



चित्र : हीरा धुर्वे

कहानियों के माध्यम से लेखन कौशल विकास के कुछ अनुभव

हुमा नाज़

यह लेख बच्चों में भाषाई कौशल 'लिखना' की समस्या और कहानियों के माध्यम से लेखन कौशल विकसित करने के तौर-तरीक़ों पर आधारित है। जब लेखिका कक्षा पाँचवीं के बच्चों के साथ काम कर रही थीं, उन्होंने पाया कि बच्चों को बाल साहित्य की बहुत सारी किताबें पढ़ने के लिए मिल जाती हैं। वे तरह-तरह कहानियाँ पढ़ते हैं, और उनके बारे में बताते भी हैं। लेकिन जब उन्हें कहानी के अनुभव लिखने के बारे में कहा जाता है, एक-दो बच्चों को छोड़कर ज़्यादातर बच्चे लिखने में झिझकते हैं और स्वतंत्र लेखन में रुचि नहीं दिखाते। बच्चे पाठ्यपुस्तक के पाठ तो पढ़ लेते हैं, अभ्यास प्रश्न के उत्तर भी मौखिक और लिखकर बता देते हैं, लेकिन जब उन्हें उसी पाठ से किसी सवाल पर अपने शब्दों में कुछ बोलने या लिखने को कहा जाता है, उन्हें कठिनाई महसूस होती है। इन अनुभवों के आधार पर लेख में वर्णित है कि सही अर्थों लिखने के कौशल का आशय बच्चों द्वारा स्वतंत्र रूप से विचार व्यक्त करना है न कि कोई पाठ पढ़ा देना, पाठ के प्रश्नों के उत्तर देना, और अभ्यास कार्य करवा देना। लेख में आगे कहानियों के माध्यम से बच्चों में लेखन कौशल की बेहतरी के लिए उनके साथ समूह में कहानी सुनने-सुनाने, बातचीत करने, और इस तरह बच्चों को लेखन से जोड़ने के विवरण हैं। साथ ही लेख में स्वतंत्र लेखन के अन्तर्गत बच्चों की रचनात्मकता, अनुभव और विचारों को ध्यान में रखते हुए उनसे करवाए गए थीम-आधारित लेखन के नमूने और विश्लेषण प्रस्तुत किए गए हैं। जिसमें बताया गया है कि इस तरह के लेखन में उपयुक्त शब्द संगठन, वाक्य संरचना, तार्किकता का होना महत्त्वपूर्ण होता है, जो कुछ बच्चों के लेखन में दिखाई देता है। लेख के अन्त में लेखिका ने निजी अनुभव और सुझाव साझा करते हुए कहा है कि यदि बच्चों को सहज माहौल और मौक़े उपलब्ध कराए जाएँ तो वे पढ़ने-लिखने के इन प्रयासों में ख़ुशी से शामिल होते हैं, और स्वतंत्र लेखन में आनन्द लेते हैं।

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/4255/

सन्दर्भ और स्वतंत्रता बनाते हैं लिखने को आसान

सुमन पटैल

लिखना, संवाद व बातचीत का ही एक तरीक़ा है। आमतौर पर शुरुआती कक्षाओं में बच्चों को लिखना यांत्रिक कौशल की तरह सिखाया जाता है। कई तरह के प्रयासों के बावजूद भी बच्चे सहजता से लिखना नहीं सीख पाते हैं। लेख की शुरुआत में लेखिका अपने फ़ील्ड विजिट के अनुभव साझा करते हुए बताती हैं कि वे बच्चे, जो अपने सहपाठियों के साथ खेलों के दौरान खुलकर बातें करते हैं, कक्षा में अपना नाम बताने में, सवालों के जवाब देने में संकोच करते हैं, और पढ़ने-लिखने में ज़्यादा रुचि नहीं दिखाते हैं। लेख में इन बच्चों को लिखने के लिए प्रोत्साहित करने, और उन्हें स्वतंत्र लेखन की ओर ले जाने के तरीक़ों का विवरण है। लेखिका, लिखने की तैयारी के रूप में खेल के दौरान बच्चों से अपने खेलों के बारे में बताने और लिखने को कहती हैं। वह बच्चों से खेलों के बारे में बातचीत करती हैं, और उन्हें स्थानीय भाषा में खेलों के बारे में अपने बचपन के अनुभव बताती हैं। इस पूरी क़वायद से बच्चे अपने खेलों के बारे में खुले मन से बताने और लिखने लगते हैं। इन अनुभवों व बच्चों के लेखन नमूनों के आधार पर लेख में सुझाया गया है कि बच्चों को जिस चीज़ के बारे में लिखने को कहा गया है, यदि वह उनके अनुभव और सन्दर्भ से जुड़ी हो और उनके पास उस विषय से जुड़ा शब्द भण्डार हो, वे स्वतंत्रता से लिखने को उत्सुक होते हैं। लेकिन आमतौर पर कक्षाओं में बच्चों को सन्दर्भहीन विषयों और मानक भाषा में लिखने को कहा जाता है। इससे वे समझ नहीं पाते हैं कि उन्हें क्या और कैसे लिखना है। कक्षा में बच्चों को बोलने के पर्याप्त मौक़े देने और पढ़ने-लिखने से जुड़ी रचनात्मक गतिविधियाँ करने से उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। जिस चीज़ के बारे में बच्चों को लिखने के लिए कहना है, अपने प्रयासों से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि वे उस चीज़ को अपने जीवन सन्दर्भों से जोड़ पाएँ, व उसके बारे में पूरे भरोसे और विस्तार के साथ बात करने लगें।

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/4256/

स्कूल और समुदाय में गालियों का इस्तेमाल और हिंसा की शुरुआत, सीमा देशमुख, अंक 16



यह लेख एक बहुत ज़रूरी विषय पर आधारित है। कई बार आसपास होने वाली घटना और मानवीय व्यवहार तब तक बुरा नहीं लगता, जब तक हम उसके असर में न आएँ या इतने असर में आएँ कि उसे रोकना तो चाहते हैं, पर कोई विकल्प न हो। निश्चय ही, यह बेहद गम्भीर मसला है। लेखिका ने स्कूलों में जाकर लड़के और लड़कियों के साथ इस विषय पर सहजता से चर्चा की। सार्थक बातचीत के ज़रिए इसको रोकने के बच्चों के ख़ुद के प्रयास और दूसरों को भी ऐसा करने से रोकने के लिए प्रयास किया है। लेख में जिस प्रक्रिया का इस्तेमाल किया गया है, उसकी स्पष्ट झलक दिख रही है– रोको... टोको... अभियान में जिस तरह से हम समाज में सामाजिक चेतना जगाना और ग़लत बातों, ग़लत व्यवहार को रोकना चाहते हैं, उसपर सचेतता से बातचीत करना ही अपने-आप में क़ाबिले तारीफ़ है। इस तरह का लेख समाज में खुले आम दी जा रही गालियों / व्यवहारों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का एक अच्छा प्रयास है। ऐसे लेखों के माध्यम से इस तरह के मुद्दों पर किशोरों, समुदाय और माता-पिता से भी बातचीत की जानी चाहिए।

माया मौर्य, सन्दर्भ व्यक्ति, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल, मध्य प्रदेश

बाल साहित्य : नए संसार की खिड़की, अनिल सिंह, अंक 17



मैं *पाठशाला* का नियमित पाठक हूँ और मुझे इस पत्रिका का इन्तज़ार रहता है। मैं *पाठशाला* के सभी आलेख पढ़ता हूँ और अपने काम में उनका इस्तेमाल भी करता हूँ। यह लेख उन सभी लोगों को रास्ता दिखाता है जो बच्चों और किशोरों की शिक्षा से जुड़े हुए हैं। अकसर देखने में आता है कि शिक्षक साथी अच्छे साहित्य की उपलब्धता और उस तक पहुँच के लिए जानकारी प्राप्त करने हेतु संघर्ष करते रहते हैं। लेख पढ़कर साहित्य चयन के मापदण्डों की भी समझ बनती है। इन मापदण्डों में सभी उम्र, वर्ग, आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि, पठन स्तर, विविध शैली, संसार की विविधता, आसपास के परिवेश, भाषा का सौन्दर्य, आशा और सकारात्मकता का संचार, स्थानीयता और मौलिकता का संचार, जीवन से जुड़ाव, सजीव और उत्कण्ठा बढ़ाने वाला चित्रांकन, पठनीयता का रस, आदि शामिल हैं। मैं अनिल की इस बात से सहमत हूँ कि पराग ऑनर लिस्ट में चयनित पुस्तकें इन मापदण्डों पर ख़री उतरती है। मसलन, *दो बहनों की मसाईमारा यात्रा* में तथाकथित पुरुष प्रधान समाज में दो महिलाओं का दूसरे देश में जाकर जंगल का भ्रमण करना एक सन्देश है, और सबकी स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व है।

इसमें पुस्तकों को प्रस्तुत करने का जो तरीक़ा अपनाया गया है वो बेहद आकर्षक है। जिन पुस्तकों को मैं अभी तक नहीं पढ़ पाया हूँ उनको पढ़ने की तीव्र इच्छा मन में जाग गई है। ये पुस्तकें हैं– *पेपर चोर, एक चोर की चौदह रातें, तुम भी आना।*

चमन लाल के पायजामे किताब में छह कहानियाँ हैं। इनको पढ़ते समय हर पाठक को ऐसा लग सकता है कि यह तो मेरी या मेरे ही आसपास के परिवेश की कहानी है। इसी तरह *बिक्सू* में शिक्षक की बच्चों के प्रति भूमिका, बच्चों में विश्वास, विविध अवसर उपलब्ध करवाना, आदि के माध्यम से एक अच्छे स्कूल और एक अच्छा अध्यापक कैसा हो, इसका जवाब मिलता है।

भरत सिंह भाटी, सन्दर्भ व्यक्ति, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्रतापगढ़, राजस्थान

यह लेख पढ़कर मन ख़ुश हो गया। लेख के शुरुआती 6-7 वाक्य एक सुन्दर दृश्य खींचते हैं। पुस्तकालय में बैठकर रंगीन किताबें पढ़ते हुए बच्चों की मोहक छवि आँखों में तैरने लगती है। शब्दों और वाक्यों को आलेख में बेहद ख़ूबसूरती से पिरोया गया है। लेख का उद्‌देश्य भी यहीं स्पष्ट हो जाता है। यह देखिए, "वह कितना मनोरम दृश्य होगा जब हर बच्चे के हाथ में एक सुन्दर किताब होगी या कोई बड़ा उसे पढ़कर कहानी सुना रहा होगा"। उन शिक्षकों एवं अभिभावकों की समस्या को आसानी से हल कर दिया गया है जो इस बात की शिकायत करते हैं कि अच्छा बाल साहित्य कहाँ से, और कैसे मिले। सामान्यतः लोग प्रकाशकों पर ध्यान नहीं देते हैं, और यूँ ही किताबें ख़रीद लेते हैं। इस लेख में बाल साहित्य के क्षेत्र में बेहतरीन कार्य कर रहे प्रकाशकों के बारे में भी बताया गया है।

नई शिक्षा नीति 2020 में पुस्तकालय व बाल साहित्य के महत्त्व को रेखांकित करना लेख को गुरुता प्रदान करता है। लेख की सबसे ख़ास बात यह है कि यह पाठकों को अन्त तक बाँधे रखता है। पराग ऑनर लिस्ट की 8 किताबों का ज़िक्र बेहद ख़ास अन्दाज़ में किया गया है। किताबों के बारे में इतनी ख़ूबसूरती से बताया गया है कि पाठक को पता ही नहीं चलता है कि लेख कब ख़त्म हो गया। अनायास ही मुँह से निकल जाता है, "अरे! ख़त्म हो गया। कुछ और किताबों का ज़िक्र क्यों नहीं किया गया।" लेख को पढ़ते हुए आप साहित्य के मनोरम संसार में गहरे उतर जाते हैं। सुन्दर किताबों के कवर पेज के चित्र पाठकों को आकर्षित करते हैं। पराग ऑनर लिस्ट की किताबों के बारे में पढ़ते हुए इन किताबों को पढ़ने की इच्छा स्वयं ही जाग जाती है। कुल मिलाकर, बेहद ख़ूबसूरत और बड़े काम का लेख है यह।

धर्मपाल गंगवार, प्रधानाध्यापक, रा. प्रा. विद्यालय हल्दी पचपेड़ा, खटीमा, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड

मैं *पाठशाला भीतर और बाहर* पत्रिका की नियमित पाठक हूँ। हालाँकि मैं स्कूल शिक्षिका नहीं हूँ, फिर भी पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों को लगातार पढ़ती हूँ। यह पत्रिका पाठकों को ऐसे लेख प्रदान नहीं करती है जिनको केवल पढ़ा जाए, अपितु यह अपने पाठकों को एक नया नज़रिया देती है जिससे वे चीज़ों को अलग दृष्टिकोण से देख सकें व शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े और स्कूल में बच्चों को पढ़ाने जैसे ज़िम्मेदारी के कार्य को करने वाले लोग अपने कार्य को और बेहतर तरीक़े से कर सकें।

अनिल सिंह ने अपने लेख में बाल साहित्य की किताबों के माध्यम से बच्चों के जीवन में चल रही गतिविधियों व बच्चों के मन के विचारों को बहुत रोचक तरीक़े से समझाया है। बाल साहित्य बच्चों को नए तरीक़े से सोचने व अपने जीवन में झाँकने का मौक़ा देने का एक अच्छा साधन है। बाल साहित्य का उपयोग कर हम हर स्तर के बच्चों के साथ अलग-अलग तरीक़े से कार्य कर सकते हैं।

लेख में बाल साहित्य के अन्तर्गत लिखी गई वरुण ग्रोवर की कहानियों में से एक कहानी 'करेजवा' में बताया गया है कि दुनिया ख़त्म होने वाली है और पिंटू को अपनी आख़िरी इच्छा पूरी करनी है। उसकी आख़िरी इच्छा गुलाब जामुन खाने की है। मैंने इस कहानी की समीक्षा लेख में पढ़ी, और इस कहानी को पूरा पढ़ने की बहुत इच्छा हुई। मैंने इसे ऑनलाइन पढ़ा। यह बहुत अच्छी कहानी थी। इसके बाद मैंने अपनी भाषा में यह कहानी आँगनबाड़ी के बच्चों को सुनाई। बच्चों ने भी इस कहानी को बहुत आनन्द के साथ सुना।

इस लेख में बच्चों के लिए अच्छे साहित्य से परिचित कराया गया है, और कुछ अच्छे प्रकाशनों के नाम भी सुझाए गए हैं। चूँकि मैं आँगनबाड़ी शिक्षिका हूँ, इसलिए बच्चों को कहानी-कविता सुनाने के लिए यह किताबें उपयोगी हैं। पहले मैं उन कहानियों को पढ़ती हूँ, फिर बच्चों को सुनाती हूँ, और वे बहुत मज़े से उन्हें सुनते हैं। लेख में बाल साहित्य की जिन किताबों के नाम सुझाए गए हैं, उनमें से बहुत-सी किताबें ऑनलाइन भी उपलब्ध हैं। अगर किसी को सिर्फ़ उन कहानियों को पढ़ना है, वह इस प्लेटफ़ॉर्म का भी उपयोग कर सकता है।

तृप्ति यादव, आँगनबाड़ी शिक्षिका, आँगनबाड़ी केन्द्र मूडरा, जरूआखेड़ा, राहतगढ़, सागर, मध्य प्रदेश

पढ़ने—लिखने में मौखिक भाषा की भूमिका, मीनू पालीवाल, अंक 17



इस आलेख में मौखिक भाषा पर ज़ोर दिया गया है। अगर हम मौखिक भाषा का प्रयोग बच्चों के साथ उनके पढ़ने-लिखने के कौशल को विकसित करने में करते हैं, तब बच्चे जल्दी पढ़ना-लिखना सीखते हैं। बहुत-से दस्तावेज़ों में यह बात दर्ज है कि पढ़ना सिखाने से पहले बच्चों के अनुभवों पर कक्षा में मौखिक बातचीत करने का मौक़ा दिया जाना चाहिए। आलेख में इस बात को बख़ूबी दर्ज किया गया है कि जब बच्चा स्वयं के बारे में, अपने आसपास के बारे में आत्मविश्वास से बात करने लग जाए, तब समझिए कि वह पढ़ना-लिखना सीखने के लिए तैयार है।

आलेख की विषयवस्तु एवं दी गई गतिविधियों के उदाहरणों में मुझे बहुत बेहतर सम्बन्ध दिखाई दिया। यह आलेख पढ़कर मुझे अपनी कक्षा के उन बच्चों के चेहरे याद आ रहे थे जिन्हें पढ़ने-लिखने में अभी भी दिक़्क़त हो रही है। मन में एक भरोसा पैदा हो रहा था कि अगर हम इस तरीक़े से अपनी कक्षा में काम करेंगे, तो बच्चों को पढ़ना-लिखना सीखने में मदद मिलेगी। मौखिक भाषा हमारी तर्कशीलता का आधार है, ऐसा इस आलेख में दर्ज किया गया है। इसमें मुझे एक उदाहरण बेहद अच्छा लगा जिसका हवाला मैं यहाँ देना चाहती हूँ।

उदाहरण : Main bazaar ja raha hoon. (आई एम गोइंग टू मार्केट) इसे पढ़ने के बाद हम जो भी निर्णय लेंगे, उसे भाषा की प्रकृति के आधार पर ले रहे हैं। इसके अनुसार हम समझते हैं कि भाषा मूलत: मौखिक होती है और लिपि भाषा को स्थाई करने का मात्र एक साधन। कोई भी भाषा किसी भी लिपि में लिखी जा सकती है।

आलेख पढ़ने के बाद लगा कि मुझे अपनी कक्षा में लगातार बच्चों के साथ उनके अनुभवों, दिनचर्या पर बातचीत करनी चाहिए, और बच्चों को मौखिक रूप से अपनी बात रखने के अधिक-से-अधिक कक्षा में मौक़े देने चाहिए।

शचि शर्मा, सहायक शिक्षक, प्रा. शा. सरदार वल्लभ भाई पटेल वार्ड, रामनगर, रायपुर, छत्तीसगढ़

विज्ञापन के ज़रिए सम्प्रेषण कला और सामाजिक सोच का विकास, प्रतिभा शर्मा, अंक 18



कठोरता में किसी भी कार्य को करना फलदायक नहीं होता है, फिर शिक्षण प्रक्रिया को कठोर बनाकर उससे किसी प्रकार के असर की उम्मीद करना बेकार है। सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को जितना लचीला बनाया जाएगा, सीखना उतना ही आसान हो जाएगा। इस लेख में 'विज्ञापन के इस्तेमाल' को शिक्षण प्रक्रिया में शामिल करके बच्चों के साथ किया गया कार्य दर्शाया गया है। हम दिनभर में न जाने कितने विज्ञापन देखते हैं, और कितने कार्य विज्ञापनों से प्रभावित होकर करते हैं। लेख यह समझने में मदद करता है कि दैनिक जीवन में उपयोग होने वाली चीज़ें एक शिक्षण सामग्री के रूप में भी कार्य करती हैं। इस लेख के माध्यम से दिखाया गया काम हमें बताता है कि हम इन विज्ञापनों का प्रयोग करके बच्चों में सम्प्रेषण की कला का विकास कर सकते हैं। बच्चे दैनिक जीवन में टीवी, मोबाइल, अख़बार, होर्डिंग, आदि देखते ही रहते हैं, और यह उनकी दिनचर्या में भी शामिल है। इसीलिए यह सभी सामग्री बच्चों के साथ अत्यधिक बातचीत करने के लिए काफ़ी सहायक साबित होती है। तरह-तरह के विज्ञापन समाज को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं, हर एक विज्ञापन एक सामाजिक सोच को दर्शाता है। बच्चे पुस्तकों की बनिस्बत इस तरह की सामग्री से सीखने में ज़्यादा रुचि दर्शाते हैं।

शिखा पटेल, सन्दर्भ व्यक्ति अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बीना, सागर, मध्य प्रदेश

पढ़ना : क्या सभी ग़लतियाँ सुधरवाई जाएँ?, मीनू पालीवाल, अंक 18

लेख का नाम ही पाठक को सोचने के लिए मजबूर कर रहा है कि कौन-सी ग़लतियाँ सुधरवाई जाएँ। यह लेख पढ़ते हुए मैं भी अपनी कक्षा के पढ़ने से जुड़े अनुभवों को याद कर रही थी। अकसर हम या तो सारी ग़लतियाँ सुधारने की कोशिश करते हैं या सभी को छोड़ देते हैं। पर यह लेख सोचने के लिए मजबूर करता हुआ दिखता है कि यदि कुछ ग़लतियों से कहानी का अर्थ बहुत ज़्यादा प्रभावित होता है, तब उनमें यथाशीघ्र सुधार की आवश्यकता दिखती है। इसके उलट, जिन ग़लतियों से अर्थ बहुत ज़्यादा प्रभावित होते नहीं दिखते, उन्हें बाद के लिए छोड़ा जा सकता है। लेखिका द्वारा बच्चों की पढ़ने से जुड़ी ग़लतियों का बहुत बारीक़ विश्लेषण किया गया है, जो पाठक को भी ग़लतियों को देखने का नया नज़रिया देता है। इस लेख के पहले हिस्से में बच्चे के पढ़ने के दौरान की गई ग़लतियों का विश्लेषण किया गया है, और बाद के हिस्से में एक वयस्क द्वारा पढ़े जाने में की गई ग़लतियों को। यह लेख न चाहते हुए भी पाठक को बच्चे और वयस्क दोनों के पढ़े जाने के दौरान की गई ग़लतियों को तुलनात्मक रूप से दिखाता है। कुछ ग़लतियों को छोड़े दें, तो बाक़ी ग़लतियाँ लगभग एक-सी दिखती हैं।

पूजा डुमागा, सन्दर्भ व्यक्ति, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, पौढ़ी, पौढ़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

दीवार पत्रिका और अभिव्यक्ति के मौक़े, लवकुश यादव, अंक 18

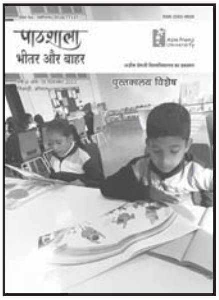
लवकुश यादव का यह कथा अनुभव मुझे बड़ा रोचक और शिक्षाप्रद लगा। दीवार पत्रिका और बच्चों को अभिव्यक्ति के मौक़े देने वाले इस लेख को पढ़कर मुझे यह समझ आया कि बच्चे किस तरह अपने मन की अभिव्यक्ति को चित्रों व छोटे-छोटे लेखों के माध्यम से आसानी से व्यक्त कर सकते हैं। जहाँ वे मन के विचारों की मौखिक अभिव्यक्ति करने में असहज होते हैं, वहीं इस प्रकार का नवाचार उन्हें अपने मन के विचारों को रखने का अच्छा मौक़ा देता है। इसे पढ़कर मैंने यह

भी अनुभव किया कि इस प्रकार बच्चों का केवल एक पक्ष ही मज़बूत नहीं होता, बल्कि यह उनके सभी पक्षों को एक साथ मज़बूत कर रहा होता है। जैसे– काग़ज़ पर चित्र या लेख को लिखने के लिए विचारों का बच्चों के मन में आना; उन विचारों को लिखावट द्वारा प्रस्तुत किया जाना; उनमें कहानी के संवादों का निर्माण कर पाना; कक्षा में उनपर चर्चा किया जाना; प्रश्नोत्तर के माध्यम से बच्चों में उस लेख के प्रति रुचि जागृत करना; आदि।

दीवार पत्रिका बच्चों की प्रतिभा को उजागर करने का बड़ा रोचक तरीक़ा है, जिसे मैं अपनी कक्षा में भी इस्तेमाल करने का प्रयास करूँगी।

प्रियांशी मिश्रा, शिक्षिका, एक परिसर एक शाला ईशुरवारा, खुरई, सागर, मध्य प्रदेश

स्वतंत्र लेखन के लिए बातचीत ज़रूरी, साहबउद्दीन अंसारी, अंक 18



इस बढ़िया लेख में लेखक ने स्कैफ़फ़ोल्डिंग (scaffolding) शब्द पर ज़ोर दिया है। स्कैफ़फ़ोल्डिंग के द्वारा ही बच्चे अपने विचार को व्यवस्थित व तारतम्यता के साथ अभिव्यक्त कर सकते हैं। मेरा भी अनुभव है कि स्वतंत्र लेखन से बच्चों के अन्दर विचार क्षमता बढ़ती है।

इस मानसिक अवस्था में बच्चों के दिमाग़ में बनने वाले नैसर्गिक विचारों को मौखिक अभिव्यक्ति / लेखन कौशल के माध्यम से वे नियंत्रित व निश्चित दिशा में प्रेरित करने में सक्षम होते हैं। हम भी अपने स्कूल में बच्चों को किसी भी विषय पर बात करने के लिए प्रोत्साहित कर, स्वतंत्र विचारों के चिन्तन को बढ़ावा देकर उनकी विचार अभिव्यक्ति को विकसित कर सकते हैं। इससे बच्चों के चिन्तन कौशल का विकास हो सकेगा और वे अपनी बात स्वतंत्र रूप से रख सकेंगे।

आरज़ू जैन, शिक्षिका, प्रा. शा. कनऊ, खुरई, सागर, मध्य प्रदेश

स्कूल में सीखने–सिखाने की ज़रूरत है पुस्तकालय, साक्षात्कार, अंक 18



पुस्तकालय के महत्त्व को कई शिक्षक-शिक्षिकाएँ समझते हैं, और साथ ही अपने स्कूलों में पुस्तकालय भी संचालित करते हैं। इस साक्षात्कार में कुछ बुनियादी और महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान गया, जिन्हें ज़्यादातर शिक्षक-शिक्षिकाएँ भूल जाते हैं। जैसे–

1. बच्चे आपको देखकर अधिक सीखते हैं, बजाय आपको सुनकर : अगर आप बच्चों से अपेक्षा करते हैं कि वे किताबों को पढ़ेंगे, और फिर उनपर आपस में चर्चा करेंगे, तब आपको भी बच्चों के बीच, उनके साथ बैठकर किताबों को पढ़ना होगा, और उनपर चर्चा करनी होगी।

2. लगातार छोटे-छोटे प्रयास, समस्या को बड़ा नहीं बनने देते : वरुण ने बताया कि वे हर सप्ताह किताबों की ज़रूरत मुताबिक़ मरम्मत करते हैं। ऐसा करना किताबों के संरक्षण व अधिकतम उपयोग के लिए आवश्यक है। ऐसा करके, वे किताबों को नष्ट होने से बचा पा रहे हैं।

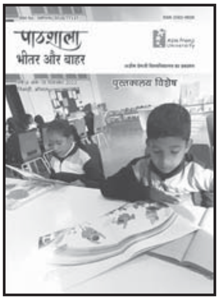
लालू लोकेंद्र यादव, सन्दर्भ व्यक्ति, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, कसरावद, खरगोन, मध्य प्रदेश

पुस्तकालय व पुस्तकों के इस्तेमाल की सम्भावनाएँ, हृदयकांत दीवान, अंक 18

इस लेख को अनौपचारिक रूप से दो साथियों के साथ भी पढ़ा। मुश्किल से 10 मिनट लगे होंगे पढ़ने में। बातचीत और पढ़ने में यह समझ बनी कि यह लेख भारी-भरकम शब्दों और उपदेशक विचारों से दूर है। सार्थक पुस्तकालय जैसा सामान्य-सा दिखने वाला विचार एक प्रेरक और प्रासंगिक विचार लगा कि यह तभी फलीभूत होगा जब इसका इस्तेमाल शिक्षक स्वयं करेंगे। इसमें *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* और *स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023* जैसे हालिया और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ों का भी ज़िक्र आया है कि स्कूल / कॉलेज में पुस्तकालय का केन्द्रीय स्थान है। इसको केवल भाषा के कालांश की सीमा से बाहर निकलकर सोचना होगा। इसमें यह बात आई है कि शिक्षा की सम्पूर्णता में शिक्षा के सभी स्तरों के लिए निर्धारित लक्ष्यों में पढ़ने की क्षमता, इच्छा व आदत का होना एक बुनियादी चट्टान है। इस रिश्ते को एक ज़रूरी और व्यापक चश्मे से देखने की आदत का विकास भी करते रहना होगा। साथ में दस्तावेज़ के ज़रिए ‘अत्तो’ की बात आई है। यह एक बड़े डर को दूर करने में सम्बल का काम करेगी। यानी, व्यवस्था यह मानती है कि किताबों का इस्तेमाल करने पर वे कट / फट सकती हैं। माने, फटने के डर से मुक्त हो अपनी परिस्थिति में किताबों का खुलकर इस्तेमाल कर सकते हैं। कहा जाता है न कि किताबें हमारी मित्र हैं, सो किताब जैसे मित्र से संवाद बढ़ाया जाए। साथ में संवाद करने के बहाने और अवसर भी हमें ख़ुद ही तलाशने होंगे।

जय शंकर चौबे, सन्दर्भ व्यक्ति, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड

स्कूल पुस्तकालय की सक्रियता के सवाल, कमलेश चंद्र जोशी, अंक 18



पुस्तकालय पर केन्द्रित यह अंक पढ़कर बहुत अच्छा लगा। ख़ासतौर पर कक्षा अनुभव से जुड़े सभी लेख बेहद जीवन्त लगे। चूँकि बच्चों के साथ पुस्तकालय-केन्द्रित चर्चाएँ और किताबों पर उनके नए-नए अनुभव सुनना मेरे काम में शामिल रहा है, इसलिए भी मैं अनुभव-आधारित लेखों से बहुत प्रभावित हुआ।

वृजेश सिंह के लेख के शुरुआत में कही गई बात, “हम ऐसे पाठक बना रहे हैं जो कक्षा छोड़ने के बाद शायद ही कभी किताब पढ़ते हैं”, आज के दौर में बेहद प्रासंगिक है, और यथार्थ के काफ़ी क़रीब भी। लेकिन यह भी सच है कि जिन बच्चों ने पुस्तकालय में पढ़ने के आनन्द को जिया है, वे अपने जीवन में किताबों के क़रीब हैं।

टिना के लेख ‘सीखना कक्षा के बाहर भी हो सकता है’ में उन्होंने कक्षा के बाहर कराई गई विभिन्न गतिविधियों का ज़िक्र किया है। यह गतिविधियाँ बच्चों को आपस में जोड़ने, मिलकर काम करने, और साथ-साथ सीखने में बहुत मददगार हैं। साथ ही ‘भालू ने खेली फ़ुटबॉल’ जैसी कहानियों को बच्चे न सिर्फ़ सुनते हैं, बल्कि उन्हें वे जीते भी हैं। कहानियाँ लम्बे समय तक बच्चों के ज़ेहन में रहती हैं, और उन्हें सीखने व नए शब्दों के प्रयोग में भी मदद करती हैं।

महेश झरबड़े, सन्दर्भ व्यक्ति, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन, मध्य प्रदेश

इस अंक में प्रकाशित आलेख ‘पुस्तकालय व पुस्तकों के इस्तेमाल की सम्भावना’ और ‘स्कूल पुस्तकालय की सक्रियता के सवाल’ शिक्षकों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इस तरह के आलेख स्कूल पुस्तकालय के उपयोग पर सवाल तो उठाते ही हैं, साथ ही उनके उपयोग के तरीक़े व महत्त्व को

भी हमारे सामने रखते हैं। दोनों ही आलेख इस कारण भी महत्त्वपूर्ण लगे कि आज प्रत्येक स्कूल में प्रति वर्ष पुस्तकों का पैसा आता है, पर कुछ विद्यालयों को छोड़कर शायद ही उनका संचालन विद्यालयों में सही ढंग से हो पा रहा है। अधिकांश विद्यालय उपयोग की जगह उनके रखरखाव पर ध्यान देते हैं। कई विद्यालयों में उपयोग न होने से पुस्तकें दीमकों द्वारा ख़राब कर दी गई हैं। अध्यापक बनने से पूर्व के प्रशिक्षणों जैसे डीएलएड, बीएड, आदि में इस तरह के आलेखों को शामिल किया जाना चाहिए। केवल कक्षा शिक्षण में नहीं, अपितु प्रशिक्षण के दौरान होने वाले कक्षा शिक्षण के दौरान उनके उपयोग के तरीक़े पर बातचीत होनी चाहिए।

हृदयकांत दीवान के आलेख को देखने पर हम पाते हैं कि साठ के दशक में भी पुस्तकों को उतना ही महत्त्व दिया जाता था जितना आज दिया जाता है। पर उनके उपयोग की स्थिति जस की तस है। अन्तर इतना है कि तब कुछ ही विद्यालयों तक पुस्तकालय की पहुँच थी। आज हर विद्यालय को इसका पैसा मिल रहा है। आज विद्यालयों के पास पैसा तो है, पर किताबों के चयन की समझ नहीं। इसका कारण भी आलेख में ही आ गया है कि अध्यापक में ख़ुद पढ़ने की रुचि नहीं है। जब तक हम स्वयं अपने अन्दर पढ़ने की आदत विकसित नहीं करेंगे, तब तक सही किताबों के चयन करने का तरीक़ा नहीं सीख सकते हैं।

कमलेश जोशी का आलेख 'स्कूल पुस्तकालयों की सक्रियता के सवाल' कोविड महामारी के दौरान बनाए गए व्हाट्सऐप समूह के साथ किए गए काम को हमारे सामने रखता है। आलेख बताता है कि कैसे बीते चार-पाँच सालों में विद्यालयों, ख़ासकर प्राथमिक, में पुस्तकालयों के उपयोग का तरीक़ा बदला है। यह आलेख भी पुस्तकों के इस्तेमाल और अध्यापकों के पढ़ने के महत्त्व को हमारे सामने रखता है। लेखक ने इन चार सालों में समूह के साथ सक्रियता से काम किया, और प्रत्येक सदस्य को स्वयं से जोड़े रखा। उनके उत्साह ने अध्यापकों को काम करने की प्रेरणा दी। लेखक का प्रत्येक विद्यालय तक जाना, पुस्तकालय की पुस्तकों को पढ़कर यह बताना कि किस तरीक़े से काम किया जा सकता है, समूह के लिए प्रेरणादायी रहा है। मुझे खुशी है कि मैं स्वयं इस समूह की सदस्य हूँ।

रेनू उपाध्याय, शिक्षिका., रा. उ. प्रा. विद्यालय धुसरा, सितारगंज, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड

सीखना कक्षा के बाहर भी हो सकता है, टिना, अंक 18



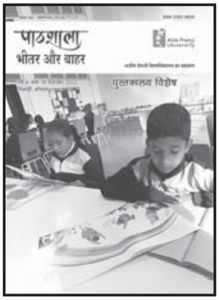
इस रोचक लेख में बताया गया है कि कोविड महामारी के दौरान बच्चों का ज़्यादा नुक़सान हुआ था जिसकी भरपाई के लिए तरह-तरह के प्रयास किए गए, और यह आगे भी जारी हैं। लेख में बच्चों के साथ कक्षा के बाहर किए गए प्रयासों के अनुभव का चरणबद्ध चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह भी महत्त्वपूर्ण लगा कि गतिविधियाँ बच्चों के लिए रोचक और अनुकूल होनी चाहिए जिससे वो सुगमता से सीख सकते हैं। लेखिका बताती हैं कि 12 दिन के शिविर को हर दिन सर्कल टाइम में बाँटकर गतिविधियाँ करवाई गईं, जिनसे बच्चों का सीखना काफ़ी हद तक बेहतर हुआ। वे शैक्षिक उपलब्धियाँ जो सालभर में हासिल की जाती हैं, लगा कि एक नियमित कैम्प करके भी की गईं गतिविधियों के द्वारा इन्हें कम समय में भी प्राप्त किया जा सकता है। इन गतिविधियों से गुज़रने के बाद बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ा, वे अपने विचारों को व्यक्त करने लगे, और सामाजिक मेल-जोल से उनकी दूसरे बच्चों से दोस्ती बढ़ी। इसे पढ़कर मुझे ख़ुद का दौर याद आ गया जब मैं भी विद्यालय में इस तरह के शिविर करवाता था, और बच्चों का सीखना सुनिश्चित किया करता था।

ललित कुशवाह, सन्दर्भ व्यक्ति, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खरगोन, मध्य प्रदेश

‘सीखना कक्षा के बाहर भी हो सकता है!’ शीर्षक और इसके अन्तर्गत किया गया काम दिलचस्प है। लेख में बच्चों के साथ किए गए काम के कई ऐसे उदाहरण हैं जिनका प्रयोग कर उनका अधिगम स्तर बढ़ाया जा सकता है। शिविर के हर दिन को 4 भागों – सर्कल टाइम, भाषा गतिविधि, गणित गतिविधि और फ़न टाइम – में बाँटा गया। कक्षा का भयमुक्त वातावरण मनोरंजक गतिविधियों के साथ अधिगम, बच्चों में रचनात्मकता का स्तर, लेखन कौशल बढ़ाने, बाल अभिव्यक्तियों को स्वतंत्र रूप से साझा करने का साहस बच्चों को देता है। यह सभी बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और शैक्षिक विकास के लिए ज़रूरी हैं। और ग्रीष्मकाल अवकाश के दौरान भी शिक्षण कार्य को करना, बच्चों के सीखना सुनिश्चित करने के साथ ही बच्चों के साथ एक अनोखा रिश्ता क़ायम करने का कार्य करता है।

गर्मी की छुट्टियों में ऐसे शिविरों के माध्यम से बच्चों की समझ को पूर्ण रूप से विकसित करने के लिए एक अच्छा प्रयास हो सकता है, बशर्ते शिक्षक एक बार ठाने तो सही...

सचिन यादव, शिक्षक सीएम राइज़ प्राथमिक स्कूल हिरनछिपा, बीना, सागर, मध्य प्रदेश



पाठशाला भीतर और बाहर का यह अंक सभी शिक्षकों व शिक्षा में रुचि लेने वाले, जागरूक और बेहतर समाज की कल्पना को साकार करने वाले लोगों के लिए महत्त्व का है। इसमें शामिल सभी लेख समाज में पढ़ने-लिखने की संस्कृति बनाने, सोचने-समझने वाले, अलग-अलग विचारों को समझने, अपने तर्क के साथ उनपर बात रखने वाले नागरिक निर्माण से सम्बन्धित हैं। आमतौर पर स्कूली शिक्षा के उद्देश्य को पाठ्यपुस्तकें पढ़ने और पाठ्यपुस्तकों में दिए सवाल-जवाब तक ही सीमित किया जाता है। यह स्कूली शिक्षा का संकीर्ण उद्देश्य मात्र है। एक सजग स्कूल और शिक्षक अपने बच्चों को उनकी नज़र से दुनिया को समझने, ख़ुद को जानने, ख़ुद के तर्क गढ़ने और सवालों से जूझने व उनकी तह तक जाने का अवसर प्रदान करता है। यह शिक्षा का एक व्यापक उद्देश्य भी है। स्कूली शिक्षा के इतने सारे आयामों को समझने का बेहद सहज अवसर इस अंक में मिलता है। इस अंक में काफ़ी नई पुस्तकों और इनके व्यापक इस्तेमाल को लेकर नए विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इस अंक के सभी लेखकों का धन्यवाद और आभार।

राम नरेश गौतम, समन्वयक, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खुरई, सागर, मध्य प्रदेश

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर **पाठशाला भीतर और बाहर** में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह, यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी अपने काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तर्क्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि। इसी तरह, कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे, यह बता सकते हैं। गणित का एक उदाहरण शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उन्हें सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह, बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही, ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों एवं उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने

में मदद मिले और उनकी भाषा व विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा, आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उनमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि **पाठशाला भीतर और बाहर** का यह उन्नीसवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

फॉर्म 4

1. **प्रकाशन का स्थान :** अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट, प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039
2. **प्रकाशन की नियत अवधि :** तिमाही
3. **मुद्रक का नाम :** शरद सुरे
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
4. **प्रकाशक का नाम :** शरद सुरे
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
5. **सम्पादक का नाम :** गुरबचन सिंह
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : ई 8 / 103 शिवकुंज रेलवे हाउसिंग सोसायटी, स्टॉप नं. 11 के पास, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 मध्यप्रदेश
6. **उन व्यक्तियों के नाम जिनका स्वामित्व है :**
   स्वामी : अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट
   पता : प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039

मैं शरद सुरे घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

तारीख 1 मार्च 2024

प्रकाशक के हस्ताक्षर
(नाम : शरद सुरे)

मुद्रक तथा प्रकाशक शरद सुरे द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163–164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E–8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26–बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन–1, भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

Azim Premji University

Anuvada Sampada

अनुवाद सम्पदा

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अनुवाद रिपॉज़ेटरी

अवधारणाओं तथा विचारों के साथ गहराई से जुड़ने हेतु विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता के 3000 से अधिक शैक्षणिक संसाधनों का भण्डार।





भारतीय भाषाओं में शैक्षणिक संसाधनों के लिए निशुल्क, ओपन-एक्सेस पोर्टल

- पुस्तकें और पुस्तक अंश
- अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के प्रकाशनों से लेख
- विभिन्न संगोष्ठियों और रीडरों से चुनिन्दा लेख

अनुवाद सम्पदा के लिए लिंक :

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ

